अप्रैल, 2018

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक	: श्री पुण्डरीक शर्मा
उप-संपादक	: सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह
परामर्शदाता	: सर्वश्री दयाल चन्द्र ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

© 2018 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

---

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल, 2018 अंक - 4

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य प्रकाशन

(2018) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.

2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

मैंने अधिवक्ता के रूप में अपने कैरियर के दौरान इस बात का गहराई पूर्वक अनुभव किया कि सिविल के मुकदमों का फैसला कराना ही अपने आपमें एक जटिल कार्य है और यदि निर्णय हो भी जाए तो उस निर्णय के साथ प्राप्त डिक्री का निष्पादन कराना उससे भी अधिक जटिल कार्य है । मैंने अनेक वरिष्ठ अधिवक्ताओं को मजाक में कहते हुए सुना कि असली मुकदमा तो डिक्री के निष्पादन वाद से आरम्भ होता है जब मुकदमा जीतने वाला पक्ष डिक्री को निष्पादन के लिए न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करता है । इस प्रक्रम पर भी न्यायालय मुकदमे में हारे हुए पक्षकार को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अन्तर्गत आक्षेप प्रस्तुत करने की अनुज्ञा प्रदान करता है और यहीं से आरम्भ होता है जीत को हार में बदलने का सिलसिला । मैंने अनेक अधिवक्ताओं और वादकारियों को न्यायालय परिसर में कहते हुए सुना कि यह ऐसा स्थान है जहां जीत हार के बराबर है और हार मौत के बराबर । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 जीत को हार में बदलने वाली धारा है । इस धारा में समाविष्ट उपबंधों के अनुसार न्यायालय को उन प्रश्नों पर विचार करना होता है जो वाद, जिसमें डिक्री पारित की गई है, के पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के मध्य उत्पन्न होते हैं और जो डिक्री के निष्पादन, उन्मोचन या तुष्टि से संबंधित होते हैं । इस धारा का लाभ उठाकर निर्णीत ऋणी डिक्रीदार की डिक्री का निष्पादन कभी होने नहीं देता । डिक्री का निष्पादन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के अन्तर्गत होता है जो अपने आप में एक संहिता है । इस आदेश में ऐसी जटिल प्रक्रियाएं समाविष्ट हैं जिनका पालन करते-करते डिक्रीदार की मुकदमे की जीत हार में बदल जाती है और उसे डिक्री से कुछ भी वसूल नहीं होता । मेरा सुझाव है कि डिक्री के निष्पादन की प्रक्रिया को सरल बनाया जाए और यह प्रक्रिया मात्र इस बिन्दु तक सीमित होनी चाहिए कि निर्णीत ऋणी को डिक्रीदार को कितना धन देना है और इस धन के संदाय के लिए उसके पास कौन-कौन से स्रोत्र हैं । आदेश 21 को समाप्त करके उसके स्थान पर डिक्री निष्पादन की अतिसरल प्रक्रिया अधिकथित की जानी चाहिए ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के

लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता को सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत करते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल, 2018

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अदिति शाकर **बनाम** के. राममूर्ति	536
कुमारी पूजा **उर्फ** पूजा कुमारी **बनाम** नन्दन कुमार **उर्फ** मुन्ना	556
कुरियन थामस (डा.) **बनाम** आर. सुन्दरराजन और अन्य	605
केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी, सतर्कता ब्यूरो **बनाम** संजीव चतुर्वेदी	564
गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्रा. लि. (मैसर्स) **बनाम** पीठासीन अधिकारी, ऋण वसूली अधिकरण और अन्य	461
तपध्यन नेगी **बनाम** राधिका नेगी और एक अन्य	485
दामोदर नाइक **बनाम** जोगिन्दर पटेल और एक अन्य	475
निर्भय सिंह **बनाम** वित्त आयुक्त (राजस्व) पंजाब और अन्य	582
राजेश कुमार और अन्य **बनाम** उत्तराखंड राज्य और अन्य	502
विनोद **बनाम** चन्दू लाल	591
श्री श्री ईश्वर महादेव और अन्य **बनाम** प्रदीप कुमार जैन	530
श्रीब्रत देब **बनाम** बैंक आफ इंडिया	524
संजय कुमार जालान **बनाम** झारखंड राज्य और अन्य	560
सुमित नय्यर **बनाम** माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड	541
सोनल **बनाम** दीपक खन्ना और एक अन्य	492

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 23

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 7 और 8 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 7, नियम 11 – आर्य समाज मन्दिर में विवाह – विधिमान्यता – कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता – चूंकि कुटुम्ब न्यायालय को ही ऐसे मामले सुनने की अनन्य अधिकारिता है – अतः वाद को रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार करना और वाद में आगे कार्यवाही न करना न्यायोचित नहीं है ।

अदिति शाकर बनाम **के. राममूर्ति** 536

पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 (1956 का 12)

– धारा 14, 21 और 7 – किराए का संदाय न किए जाने के कारण किराएदार की बेदखली – वाद के समन की तामीली के पश्चात् किराएदार द्वारा किराए का संदाय न किए जाने के बाबत स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहना और उसके द्वारा मकान-मालिक/भवन स्वामी द्वारा किराया प्राप्त करने से इनकार के बाबत कोई साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाना या उसके द्वारा न्यायालय में किराया जमा करने में विफल रहना – किराएदार की प्रतिरक्षा समाप्त किए जाने योग्य है और वह किराएदारी वाले स्थान से बेदखल/निष्कासित किए जाने योग्य है ।

श्री श्री ईश्वर महादेव और अन्य बनाम **प्रदीप कुमार जैन** 530

बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 (1993 का 51)

– धारा 19(22) [सपठित बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 6, 21, 35 और भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा तारीख 13 जुलाई, 2005 को जारी किए गए दिशा-निर्देश] – वसूली प्रमाणपत्र का निष्पादन – निजी पक्ष को गैर निष्पादनीय आस्तियों का समनुदेशन – गैर निष्पादनीय आस्तियों का समनुदेशन केवल किसी अन्य

पृष्ठ संख्या

बैंकिंग कम्पनी के पक्ष में किया जा सकता है और इस संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों का कड़ाईपूर्वक पालन किया जाना चाहिए – किसी निजी पक्ष को गैर निष्पादनीय आस्तियों का अन्तरण भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों के विपरीत होगा ।

गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्रा. लि. (मैसर्स) बनाम **पीठासीन अधिकारी, ऋण वसूली अधिकरण और अन्य** 461

– धारा 19(22) [सपठित ऋण वसूली अधिकरण प्रक्रिया विनियम, 1997 का विनियम 69, 70, 71 और 72] – वसूली प्रमाणपत्र का निष्पादन – अधिकरण की अनुज्ञा से गैर निष्पादनीय आस्तियों का किसी निजी पक्ष को अन्तरण होना और बैंकिंग कम्पनी का कार्यवाहियों से अलग हो जाना अनुचित – जब एक बार बैंक अधिकरण से वसूली प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेता है, तो उस वसूली प्रमाणपत्र का प्रवर्तन धारा 29 को दृष्टि में रखते हुए आयकर की वसूली की भांति किया जाना चाहिए ।

गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्रा. लि. (मैसर्स) बनाम **पीठासीन अधिकारी, ऋण वसूली अधिकरण और अन्य** 461

– धारा 19(22) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14] – वसूली प्रमाणपत्र का निष्पादन – गैर निष्पादनीय आस्तियों का निजी पक्ष को अन्तरण में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन – बैंकिंग कम्पनी द्वारा समनुदेशित रकम लोक धन होती है, अतः समस्त निजी भावी पक्षों को अधिकतम मूल्य का प्रस्ताव देने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए और बैंक गैर निष्पादनीय आस्तियों का निजी बातचीत द्वारा विक्रय नहीं कर सकते ।

गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्रा. लि. (मैसर्स) बनाम **पीठासीन अधिकारी, ऋण वसूली अधिकरण और अन्य** 461

पृष्ठ संख्या

बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 (1949 का 10)

– धारा 6, 21 और 35क [सपठित संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 4] – बैंकिंग कारबार – बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के मध्य गैर निष्पादनीय आस्तियों का समनुदेशन भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों द्वारा आच्छादित होता है, अतः संपत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंध लागू नहीं होंगे ।

गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्रा. लि. (मैसर्स) बनाम **पीठासीन अधिकारी, ऋण वसूली अधिकरण और अन्य** 461

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 27 और 28 – संविदा – विखंडन – अनुतोष – वादकालीन अंतरिती द्वारा उक्त अनुतोष का अनुरोध किया जा सकता है ।

विनोद बनाम **चन्दू लाल** 591

– धारा 28 – संविदा का विखंडन – अनुतोष – विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् उक्त अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता ।

विनोद बनाम **चन्दू लाल** 591

– धारा 38 – स्थायी व्यादेश – वादी द्वारा वाद भूमि पर प्रतिवादी का हस्तक्षेप रोकने के लिए वाद – प्रतिवादी द्वारा वादी के पुत्र से भूमि क्रय करने का कथन किया जाना – विक्रेता द्वारा भूमि का विभाजन कराने का कोई साक्ष्य न होना – मात्र नामांतरण के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि विक्रेता ने पूर्व में कोई विभाजन करा लिया था – वादी व्यादेश के लिए हकदार है ।

दामोदर नाइक बनाम **जोगिन्दर पटेल और एक अन्य** 475

– धारा 38 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 102 – स्थायी व्यादेश के लिए वाद – प्रतिवादी द्वारा वादी के पुत्र के हिस्से को खरीदने के आधार

पृष्ठ संख्या

पर वाद संपत्ति में अपने अधिकार का दावा किया जाना – प्रतिवादी द्वारा यह मौखिक अभिवाक् किया जाना कि क्रेता ने संपत्ति का विभाजन करा लिया था – सबूत का भार – पक्षकारों के बीच विभाजन का कोई दस्तावेजी सबूत न होना – यह भार प्रतिवादी पर जाता है कि वह यह साबित करे कि भूमि का विभाजन कर लिया गया था ।

दामोदर नाइक बनाम **जोगिन्दर पटेल और एक अन्य** 475

श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1988 (1988 का 16)

– धारा 5 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 12] – 1988 के अधिनियम के अन्तर्गत गठित श्री माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन राज्य का दर्जा नहीं रखता और इसलिए श्री माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड के विरुद्ध मूल अधिकारों के अतिलंघन का अभिकथन करने वाली याचिका पोषणीय नहीं है ।

सुमित नय्यर बनाम **माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड** 541

– धारा 5 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 226] – जनहित याचिका में जनहित के तत्व का अन्तर्वलित होना – जनहित याचिका में जनहित के तत्व का अन्तर्वलित होना एक अनिवार्य शर्त है और साथ ही राज्य या उसके कृत्यकारियों द्वारा लिया गया निर्णय ऐसा होना चाहिए जो जनहित के विरुद्ध हो या जनता को सूचित किए बिना एकपक्षीय रूप से पारित किया गया हो ।

सुमित नय्यर बनाम **माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड** 541

– धारा 5 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 226] – जनहित याचिका को सुने जाने का अधिकार – याची को यह दर्शित करना चाहिए कि वह राज्य अथवा राज्य के कृत्यकारियों द्वारा जनहित के विरुद्ध लिए गए निर्णय से स्वयं पीड़ित है या वह जनहित के विरुद्ध किए जाने वाले कार्यों का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है या राज्य अथवा राज्य के कृत्यकारियों द्वारा जनहित विरोधी कार्यों से पीड़ित

पृष्ठ संख्या

लोगों ने उससे सम्पर्क किया है ।

सुमित नय्यर बनाम **माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड** 541

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8)

– धारा 25 और घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) – धारा 23 – अवयस्क बालक की संरक्षकता – माता द्वारा संरक्षकता के लिए दावा – पिता द्वारा, माता द्वारा घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन फाइल आवेदन के लंबन का आश्रय लिया जाना – वर्जन – संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन संरक्षकता के लिए फाइल आवेदन को घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन फाइल आवेदन विवर्जित नहीं करता – अतः, ऐसे आवेदन पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाना चाहिए ।

सोनल बनाम **दीपक खन्ना और एक अन्य** 492

– धारा 25 – अवयस्क की संरक्षकता के लिए आवेदन – न्यायालय द्वारा वादी और प्रतिवादी द्वारा किए गए अभिकथनों और प्रति-अभिकथनों को विचार में लेकर निष्कर्ष निकाला जाना – अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करते समय न्यायालय को ऐसे अभिकथनों को विचार में लेने के बजाय बच्चे के कल्याण पर विचार करना चाहिए ।

सोनल बनाम **दीपक खन्ना और एक अन्य** 492

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 और 19(1) तथा 19(2)(छ) [सपठित पी. डी. एस. डीलरों के लिए डोर स्टेप डिलीवरी स्कीम] – निविदा द्वारा संविदाकारों की नियुक्ति – डीलरशिप हेतु निविदा आवेदन के साथ शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए निबंधन और शर्तें – चुनौती – संविधान के अनुच्छेद 19(1) के अधीन गारंटीकृत स्वतंत्रता भी युक्तियुक्त निबंधनों और शर्तों के अध्यधीन है – अतः निविदा हेतु ऐसी शर्तें और

पृष्ठ संख्या

निबंधन अधिकथित करना अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता – न्यायालय द्वारा ऐसे किसी मामले में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

संजय कुमार जालान बनाम **झारखंड राज्य और अन्य** 560

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 35 और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 34 – विधिक हैसियत की घोषणा के लिए वाद – ऐसे व्यक्ति द्वारा फाइल नहीं किया जा सकता जो संपत्ति से संबंधित कुटुंब के लिए गैर-व्यक्ति हो ।

तपध्यन नेगी बनाम **राधिका नेगी और एक अन्य** 485

सामान्य खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10)

– धारा 10 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 4 और 10] – अपील फाइल किए जाने की परिसीमा की संगणना – न्यायालय के अवकाश के दौरान बंद रहने के कारण परिसीमा के प्रयोजनार्थ अवधि का व्यतीत हो जाना, यद्यपि मामला फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ रजिस्ट्री खुली हुई थी – चूंकि न्यायालय के बन्द रहने की अवधि के दौरान रजिस्ट्री खुली हुई थी और मूल, अपीली, पुनरीक्षण, सिविल या रिट अधिकारिता से संबंधित नए मामले फाइल किए गए थे, अपीलार्थी का यह कर्तव्य था कि वह परिसीमा की विहित अवधि के भीतर अपील फाइल करता और इन परिस्थितियों में वह परिसीमा की अवधि के विस्तार का लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं है ।

राजेश कुमार और अन्य बनाम **उत्तराखंड राज्य और अन्य** 502

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 9, नियम 13 और आदेश 17, नियम 2 और 3 – नुकसानी के लिए वाद – एकपक्षीय डिक्री – विचारण न्यायालय द्वारा एक पक्षीय कार्यवाही में गुण-दोष

पृष्ठ संख्या

के आधार पर आदेश पारित किया जाना – अपील – ग्राह्यता – जहां कोई पक्षकार अनुपस्थित है वहां न्यायालय आदेश 17 के नियम 2 के अधीन कार्यवाही करेगा – व्यथित पक्षकार सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल कर सकता है और ऐसे आवेदन की खारिजी पर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जा सकती है ।

कुरियन थामस (डा.) बनाम **आर. सुन्दरराजन और अन्य** 605

– धारा 11, स्पष्टीकरण (v) और आदेश 2, नियम 2 – पूर्व न्याय के सिद्धांत का लागू होना – याची द्वारा फाइल की गई पूर्ववर्ती रिट याचिका में छुट्टी नगदीकरण की रकम मय ब्याज दिलाए जाने का दावा किया गया जो मंजूर हुई और न्यायालय ने मात्र छुट्टी नगदीकरण की रकम का संदाय किए जाने के लिए निर्देशित किया – याची द्वारा फाइल की गई पश्चात्वर्ती रिट याचिका में छुट्टी नगदीकरण के रूप में संवितरित रकम पर ब्याज के संदाय का दावा किया गया – पूर्ववर्ती रिट याचिका में ब्याज न दिलाए जाने का प्रभाव – यदि पूर्ववर्ती रिट याचिका में ब्याज के संदाय का आदेश पारित नहीं किया जाता तो यह धारणा की जाएगी कि न्यायालय ने ब्याज दिलाने से इनकार कर दिया, अतः न्यायालय को पश्चात्वर्ती रिट याचिका में ब्याज दिलाने की अधिकारिता नहीं है – पश्चात्वर्ती याचिका पूर्व न्याय के सिद्धांत द्वारा बाधित है ।

श्रीव्रत देब बनाम **बैंक आफ इंडिया** 524

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22)

– धारा 24(1) परन्तुक 2(च) – सूचना के प्रकटीकरण से छूट – सतर्कता ब्यूरो की भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना को समाविष्ट करने वाली रिपोर्ट – इस तथ्य के बाद भी कि सतर्कता ब्यूरो को अधिनियम की अनुसूची में वर्णित

पृष्ठ संख्या

संगठन होने के कारण इस सूचना को प्रदान करने से छूट प्राप्त है, फिर भी वह इस सूचना को प्रदान करने का दायी है ।

केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी, सतर्कता ब्यूरो बनाम **संजीव चतुर्वेदी** 564

– धारा 24 – सूचना के प्रकटीकरण से छूट – इस धारा का प्रयोग सूचना अधिकार अनुरोधों को अंधाधुंध रूप से दबाने के लिए नहीं कर सकते – लोक प्राधिकारी का कर्तव्य है कि वे सूचनाएं उपलब्ध कराने के लिए अधिनियम के अंतर्गत अपेक्षित इंतजाम करें यदि सूचनाएं भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित हैं, सिवाय सुरक्षा और सतर्कता से संबंधित मामलों के ।

केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी, सतर्कता ब्यूरो बनाम **संजीव चतुर्वेदी** 564

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30)

– धारा 25 – सहदायिकी संपदा – संपदा के स्वामी द्वारा याची के हक में रजिस्ट्रीकृत विल का निष्पादन – याची द्वारा संपदा स्वामी की हत्या – सेशन न्यायालय द्वारा याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि – उच्च न्यायालय द्वारा याची की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग 1) में परिवर्तित करके 10 वर्ष के कारावास से दंडादिष्ट किया जाना – कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की संपत्ति के लिए उत्तराधिकार प्राप्त नहीं कर सकता जिसका जीवन ऐसे व्यक्ति द्वारा समाप्त कर दिया गया हो – यह सिद्धांत साम्या, न्याय और बेहतर अन्तःकरण पर आधारित है जिससे कि ऐसा व्यक्ति स्वयं द्वारा हत्या किए गए व्यक्ति की विरासत से विवर्जित हो जाए ।

निर्भय सिंह बनाम **वित्त आयुक्त (राजस्व) पंजाब और अन्य** 582

पृष्ठ संख्या

हिन्दू दत्तक और भरण पोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78)

– धारा 10(iv) – दत्तक – 15 वर्ष से अधिक की आयु के बालक का दत्तक ग्रहण – दत्तक पुत्र के नैसर्गिक पिता का यह कथन कि उसने स्कूल में प्रवेश के समय दो वर्ष आयु बढ़ाकर लिखाई थी – विधिमान्यता – स्कूल प्रवेश रजिस्टर में उल्लिखित आयु को प्रमाणिक माना जाएगा – अतः ऐसा दत्तक विधिमान्य नहीं माना जा सकता ।

तपध्यन नेगी बनाम **राधिका नेगी और एक अन्य** 485

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 12(1)(ख) और 13(1) – विवाह-विच्छेद के लिए वाद – पति द्वारा यह आधार लिया जाना कि पत्नी विवाह के पूर्व से किसी अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी – पत्नी द्वारा लिखित कथन फाइल करने के पश्चात् मामले में पैरवी छोड़ देना – साक्षियों द्वारा यह साक्ष्य देना कि पत्नी ने विवाह के 6 मास और 13 दिन के पश्चात् पुत्री को जन्म दिया था – पत्नी द्वारा साक्षियों की प्रतिपरीक्षा न की जानी – पति को विवाह-विच्छेद की डिक्री ठीक ही मंजूर की गई है ।

कुमारी पूजा उर्फ **पूजा कुमारी** बनाम **नन्दन कुमार** उर्फ **मुन्ना** 556

गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्रा. लि. (मैसर्स)

बनाम

पीठासीन अधिकारी, ऋण वसूली अधिकरण और अन्य

तारीख 18 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति अरूण टंडन और न्यायमूर्ति ऋतुराज अवस्थी

बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 (1993 का 51) – धारा 19(22) [सपठित बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 6, 21, 35 और भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा तारीख 13 जुलाई, 2005 को जारी किए गए दिशा-निर्देश] – वसूली प्रमाणपत्र का निष्पादन – निजी पक्ष को गैर निष्पादनीय आस्तियों का समनुदेशन – गैर निष्पादनीय आस्तियों का समनुदेशन केवल किसी अन्य बैंकिंग कम्पनी के पक्ष में किया जा सकता है और इस संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों का कड़ाईपूर्वक पालन किया जाना चाहिए – किसी निजी पक्ष को गैर निष्पादनीय आस्तियों का अन्तरण भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों के विपरीत होगा ।

बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 – धारा 19(22) [सपठित ऋण वसूली अधिकरण प्रक्रिया विनियम, 1997 का विनियम 69, 70, 71 और 72] – वसूली प्रमाणपत्र का निष्पादन – अधिकरण की अनुज्ञा से गैर निष्पादनीय आस्तियों का किसी निजी पक्ष को अन्तरण होना और बैंकिंग कम्पनी का कार्यवाहियों से अलग हो जाना अनुचित – जब एक बार बैंक अधिकरण से वसूली प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेता है, तो उस वसूली प्रमाणपत्र का प्रवर्तन धारा 29 को दृष्टि में रखते हुए आयकर की वसूली की भांति किया जाना चाहिए ।

बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993– धारा 19(22) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14] – वसूली प्रमाणपत्र का निष्पादन – गैर निष्पादनीय आस्तियों का निजी पक्ष को अन्तरण में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन – बैंकिंग कम्पनी

द्वारा समनुदेशित रकम लोक धन होती है, अतः समस्त निजी भावी पक्षों को अधिकतम मूल्य का प्रस्ताव देने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए और बैंक गैर निष्पादनीय आस्तियों का निजी बातचीत द्वारा विक्रय नहीं कर सकते ।

बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 (1949 का 10) – धारा 6, 21 और 35क [सपठित संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 4] – बैंकिंग कारबार – बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के मध्य गैर निष्पादनीय आस्तियों का समनुदेशन भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों द्वारा आच्छादित होता है, अतः संपत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंध लागू नहीं होंगे ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि भारतीय स्टेट बैंक ने मैसर्स अशोक आयरन एण्ड स्टील रोलिंग मिल्स और अन्य के विरुद्ध गोरखपुर के सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खंड) के न्यायालय में अन्य अनुतोषों के साथ 74,96,423/- रुपए की ब्याज सहित वसूली के लिए 1998 का वाद संख्या 405 संस्थित कराया । वाद 1993 के अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात् इलाहाबाद के ऋण वसूली अधिकरण को अंतरित हो गया और 2000 के अधिकरण आवेदन संख्या 884 के रूप में रजिस्ट्रीकृत हो गया । बैंक का दावा तारीख 3 अक्तूबर, 2005 के निर्णय और आदेश के अन्तर्गत डिक्री हो गया । अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि बैंक 20.75 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से तिमाही बाकी के साथ वादकालीन ब्याज और भविष्य के ब्याज सहित 74,96,423/- रुपए की राशि प्राप्त करने का हकदार है । आदेश में यह भी उल्लिखित है कि प्रतिवादियों के विरुद्ध वाद की लागत का भी आदेश पारित किया गया । अधिकरण ने आगे निर्देशित किया कि 1993 के अधिनियम की धारा 19(22) के अधीन वादपत्र की अनुसूची क और ख के अनुसार आडमान और बंधक की गई संपत्तियों के विवरण के साथ वसूली प्रमाणपत्र तुरन्त जारी किया जाए । तारीख 3 फरवरी, 2005 का वसूली प्रमाणपत्र जारी किया गया और इस संबंध में निष्पादन कार्यवाही भारतीय स्टेट बैंक द्वारा निष्पादन आवेदन प्रस्तुत किए जाने पर 2006 के ऋण वसूली मामला संख्या 7 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई । जब निष्पादन कार्यवाही लम्बित थी, तभी भारतीय स्टेट बैंक ने अभिकथित रूप से वसूली प्रमाणपत्र के अन्तर्गत आने वाली आस्तियों को कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड के पक्ष में तारीख 29 मार्च, 2006 के समनुदेशन विलेख द्वारा समनुदेशित कर दिया । तत्पश्चात्, निष्पादन कार्यवाही में कोटेक महिन्द्रा

बैंक लिमिटेड को उनके द्वारा तारीख 27 मार्च, 2007 को प्रस्तुत किए गए आवेदन पर तारीख 25 जनवरी, 2008 के आदेश द्वारा भारतीय स्टेट बैंक के स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिया गया और ऋणियों को नए नोटिस जारी कर दिया गया । कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड ने अभिकथित रूप से वसूली प्रमाणपत्र के अन्तर्गत आने वाली आस्तियों को मैसर्स गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्राइवेट लिमिटेड नामक प्राइवेट पक्ष के पक्ष में पुनः समनुदेशित कर दिया । इसके बदले में समनुदेशिती ने निष्पादन मामले में वसूली प्रमाणपत्र धारक के रूप में प्रतिस्थापित किए जाने/पक्ष बनाए जाने के प्रयोजनार्थ एक आवेदन प्रस्तुत किया । साथ ही साथ कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड द्वारा निष्पादन कार्यवाही से उनका नाम हटाए जाने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया । अधिकरण ने तारीख 9 अगस्त, 2012 के आदेश के अन्तर्गत निजी पक्ष-अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन को अस्वीकृत कर दिया और कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन को मंजूर कर लिया । इसके परिमाणस्वरूप वसूली कार्यवाही को अभिलेख कक्ष को भेज दिया गया । मैसर्स गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्राइवेट लिमिटेड ने ऋण वसूली अधिकरण के तारीख 9 अगस्त, 2012 के आदेश को चुनौती देते हुए 2012 की रिट याचिका संख्या 62682 फाइल की । याचिका का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस बात पर जोर दिया गया कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी दिशा-निर्देश अपने आप में संपूर्ण संहिता हैं और यह अपेक्षित नहीं है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंधों का अवलंब लिया जाए । वास्तविकता यह है कि इस बात को पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंध इस मामले पर लागू नहीं होते । इस पृष्ठभूमि में न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष को पलटने में बिल्कुल सही था कि ऋण वसूली अधिकरण द्वारा जारी किया गया वसूली प्रमाणपत्र, जिसमें गैर निष्पादनीय आस्ति का समनुदेशन दर्शाया गया और जो बैंकिंग कंपनी के पक्ष में विद्यमान था, का विक्रय/समनुदेशन कड़ाईपूर्वक तारीख 13 जुलाई, 2005 के भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए केवल किसी अन्य बैंकिंग कंपनी के पक्ष में किया जा सकता था । न्यायालय के विचार में समनुदेशन, जिसका अवलंब अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा अधिकरण के समक्ष कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड के स्थान पर प्रतिस्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यंत दृढ़तापूर्वक लिया गया, तारीख 13 जुलाई, 2005 की

भारतीय रिजर्व बैंक की नीति के विपरीत होने के कारण दोषपूर्ण है । अधिकरण ने उक्त अवैध समनुदेशन के आधार पर फाइल की गई निष्पादन कार्यवाही में अपीलार्थी को प्रतिस्थापित किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकृत करके न्यायसंगत कार्य किया है । इस बात का उल्लेख ऊपर पहले ही किया जा चुका है कि 1949 के बैंकिंग विनियम अधिनियम और तारीख 13 जुलाई, 2005 के नीतिगत निर्णय को दृष्टि में रखते हुए किसी निजी पक्ष, जो बैंकिंग कम्पनी नहीं है/आस्तियां दिशा-निर्देशों द्वारा आच्छादित नहीं हैं, के पक्ष में जारी किए गए वसूली प्रमाणपत्र द्वारा आच्छादित आस्तियों का समनुदेशन दिशा-निर्देशों के विपरीत होने के कारण दोषपूर्ण है, इसलिए इसका कोई विधिक परिणाम नहीं हो सकता, जहां तक ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों का संबंध है । चूंकि इस मामले के तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए केवल एक ही विचार अर्थात् वसूली प्रमाणपत्र में दर्शित आस्तियों के अंतरण पर विचार का व्यक्त किया जाना संभव है, न्यायालय अभिनिर्धारित करता है कि अधिकरण से पुनः सुनवाई का अवसर प्रदान किए जाने का अनुरोध करने के द्वारा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं की जा सकेगी । न्यायालय का यह सुस्पष्ट विचार है कि भारतीय स्टेट बैंक द्वारा मैसर्स अशोक आयरन एण्ड स्टील रोलिंग मिल्स और अन्य को वित्तीय आस्तियों के रूप में जो अग्रिम दिए गए थे, वे और कुछ नहीं थे बल्कि लोक धन थे । यदि एक बार भारतीय स्टेट बैंक ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष सफल हो गया और वसूली प्रमाणपत्र जारी कर दिया गया, तो वसूली उस प्रक्रिया का अनुपालन किए जाने के पश्चात् प्रवर्तित की जाएगी, जो 1993 के अधिनियम की धारा 29 को दृष्टि में रखते हुए आयकर की वसूली के संबंध में लागू होती है । हमारे विचार में अधिकरण कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड को कार्यवाही से बाहर होने की अनुज्ञा प्रदान नहीं कर सकता था और उनको आयकर के उपबंधों के अधीन निर्णीत ऋणी के विरुद्ध वसूली प्रमाणपत्र का प्रवर्तन करना चाहिए था । न्यायालय इस मामले के एक अन्य पहलू को भी उजागर करना चाहते हैं अर्थात् क्या बैंक द्वारा गैर निष्पादनीय आस्तियों का किसी निजी व्यक्ति के पक्ष में अन्तरण संविधान के अनुच्छेद 14 के पुष्टिकरण में किया गया है और वसूली प्रमाणपत्र में दर्शाई गई आस्तियों के समनुदेशन में हितबद्ध समस्त भावी निजी पक्षों को उनके सर्वोत्तम मूल्य का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए था । गैर निष्पादनीय आस्तियों के विक्रय के प्रयोजनार्थ निजी बातचीत के द्वारा बैंक द्वारा किया

गया कोई भी प्रयास स्वयंमेव ही अवैध होगा । अंततः यह लोक धन है जो व्यर्थ होगा । (पैरा 16, 17, 18, 20, 24 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	ए. आई. आर. 2011 इलाहाबाद 19 : **कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड** बनाम **मैसर्स चोपड़ा फेब्रिकेटर्स एण्ड मैन्युफैक्चर्स (प्राइवेट) लिमिटेड ;**	12
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1521 : **आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड** बनाम **ए. पी. एस. स्टार इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य ;**	12
[2007]	ए. आई. आर. 2007 दिल्ली 65 : **हरियाणा स्टील एण्ड अलायज लिमिटेड** बनाम **आई. एफ. सी. आई. ।**	12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की द्वितीय अपील सं. 342.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अन्तर्गत अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अरविन्द श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

आदेश

विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया निर्णय, जिसके कारण तारीख 10 फरवरी, 2017 को वर्तमान अपील फाइल की गई, 2012 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 62682 में पारित किया गया था और इस निर्णय को मुख्यतः इस आधार पर हमारे समक्ष चुनौती दी गई है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष को अभिलिखित करते हुए न्यायसंगत नहीं थे कि भारतीय स्टेट बैंक, जो कि एक राष्ट्रीयकृत बैंक है, और उसका समनुदेशिती कोटेक महिन्द्रा बैंक 1993 के बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् 1993 का अधिनियम कह कर निर्दिष्ट किया गया है) के अन्तर्गत कार्यवाही में ऋण वसूली अधिकरण द्वारा जारी किए गए वसूली प्रमाणपत्र द्वारा आच्छादित आस्तियों को केवल बैंकिंग कंपनी के पक्ष में समनुदेशित कर

सकते थे और न कि निजी व्यक्तियों के पक्ष में जैसे कि हमारे समक्ष उपस्थित अपीलार्थी (मैसर्स गोरखपुर स्टील एण्ड मेटल्स प्राइवेट लिमिटेड) ।

2. यह निवेदन किया गया है कि 2006 के मामला संख्या डी. आर. संख्या 7 (स्टेट बैंक आफ इंडिया बनाम मैसर्स अशोक आयरन एण्ड स्टील रोलिंग मिल्स और अन्य) में पीठासीन अधिकारी द्वारा पारित आदेश, जिसके द्वारा अपीलार्थी मैसर्स गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्राइवेट लिमिटेड के उनको कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड के स्थान पर प्रतिस्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया गया, विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है । इस अपील में प्रत्यर्थियों के काउंसेल ने प्रत्युत्तर में दलील दी कि किसी निजी व्यक्ति को उन आस्तियों, जिनका उल्लेख वसूली प्रमाणपत्र में किया गया है, का समनुदेशित किया जाना 1993 के अधिनियम सपठित भारतीय रिजर्व बैंक के मार्गदर्शक सिद्धांतों के उपबंधों के अन्तर्गत अनुज्ञेय नहीं है । चूंकि कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड, जिनको वसूली अधिकरण के समक्ष फाइल किए गए आवेदन में प्रतिस्थापित किया गया था, ने कार्यवाहियों से उनका नाम हटाए जाने की मांग की थी और उनका आवेदन मंजूर हो चुका है, 1993 के अधिनियम के अधीन वसूली कार्यवाही आगे चालू नहीं रखी जा सकती ।

3. अतः, इस प्रकार से उठाए गए विवाद का मूल्यांकन किए जाने के प्रयोजनार्थ यह समुचित होगा कि आरम्भिक रूप से सुसंगत तथ्यों पर चर्चा की जाए ।

4. भारतीय स्टेट बैंक ने मैसर्स अशोक आयरन एण्ड स्टील रोलिंग मिल्स और अन्य के विरुद्ध गोरखपुर के सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खंड) के न्यायालय में अन्य अनुतोषों के साथ 74,96,423/- रुपए की ब्याज सहित वसूली के लिए 1998 का वाद संख्या 405 संस्थित कराया ।

5. वाद 1993 के अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात् इलाहाबाद के ऋण वसूली अधिकरण को अंतरित हो गया और 2000 के अधिकरण आवेदन संख्या 884 के रूप में रजिस्ट्रीकृत हो गया । बैंक का दावा तारीख 3 अक्तूबर, 2005 के निर्णय और आदेश के अन्तर्गत डिक्री हो गया । अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि बैंक 20.75 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से तिमाही बाकी के साथ वादकालीन ब्याज और भविष्य के ब्याज सहित 74,96,423/- रुपए की राशि प्राप्त करने का हकदार है । आदेश में यह भी उल्लिखित है कि प्रतिवादियों के विरुद्ध वाद की लागत का भी आदेश पारित किया गया । अधिकरण ने आगे निर्देशित किया कि 1993 के

अधिनियम की धारा 19(22) के अधीन वादपत्र की अनुसूची क और ख के अनुसार आडमान और बंधक की गई संपत्तियों के विवरण के साथ वसूली प्रमाणपत्र तुरन्त जारी किया जाए । तारीख 3 फरवरी, 2005 का वसूली प्रमाणपत्र जारी किया गया और इस संबंध में निष्पादन कार्यवाही भारतीय स्टेट बैंक द्वारा निष्पादन आवेदन प्रस्तुत किए जाने पर 2006 के ऋण वसूली मामला संख्या 7 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई ।

6. जब निष्पादन कार्यवाही लम्बित थी, तभी भारतीय स्टेट बैंक ने अभिकथित रूप से वसूली प्रमाणपत्र के अन्तर्गत आने वाली आस्तियों को कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड के पक्ष में तारीख 29 मार्च, 2006 के समनुदेशन विलेख द्वारा समनुदेशित कर दिया । तत्पश्चात्, निष्पादन कार्यवाही में कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड को उनके द्वारा तारीख 27 मार्च, 2007 को प्रस्तुत किए गए आवेदन पर तारीख 25 जनवरी, 2008 के आदेश द्वारा भारतीय स्टेट बैंक के स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिया गया और ऋणियों को नए नोटिस जारी कर दिए गए ।

7. कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड ने अभिकथित रूप से वसूली प्रमाणपत्र के अन्तर्गत आने वाली आस्तियों को मैसर्स गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्राइवेट लिमिटेड नामक प्राइवेट पक्ष के पक्ष में पुनः समनुदेशित कर दिया । इसके बदले में समनुदेशिती ने निष्पादन मामले में वसूली प्रमाणपत्र धारक के रूप में प्रतिस्थापित किए जाने/पक्ष बनाए जाने के प्रयोजनार्थ एक आवेदन प्रस्तुत किया । साथ ही साथ कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड द्वारा निष्पादन कार्यवाही से उनका नाम हटाए जाने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया ।

8. अधिकरण ने तारीख 9 अगस्त, 2012 के आदेश के अन्तर्गत निजी पक्ष-अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन को अस्वीकृत कर दिया और कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन को मंजूर कर लिया । इसके परिमाणस्वरूप वसूली कार्यवाही को अभिलेख कक्ष को भेज दिया गया ।

9. मैसर्स गोरखपुर स्टील्स एण्ड मेटल्स प्राइवेट लिमिटेड ने ऋण वसूली अधिकरण के तारीख 9 अगस्त, 2012 के आदेश को चुनौती देते हुए 2012 की रिट याचिका संख्या 62682 फाइल की ।

10. ऋणी द्वारा रिट न्यायालय के समक्ष यह आक्षेप फाइल किया गया कि गैर निष्पादनीय आस्तियों का अंतरण, जैसा कि एक निजी पक्ष (याची-अपीलार्थी) के पक्ष में बैंककारी कंपनी/वित्तीय संस्था अर्थात् स्वयं

कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड द्वारा वसूली प्रमाणपत्र में उल्लिखित है, अवैध था और 1969 के बैंककारी विनियम अधिनियम और उक्त अधिनियम की धारा 6 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा तारीख 13 जुलाई, 2005 को विरचित दिशा-निर्देशों के उपबंधों के विपरीत था । मार्गदर्शक सिद्धांत, जो बाध्यकारी हैं, केवल बैंक और वित्तीय संस्थाओं के मध्य गैर निष्पादनीय आस्तियों के क्रय विक्रय की अनुज्ञा प्रदान करते हैं । बैंक गैर निष्पादनीय आस्तियों का विक्रय, क्रय या अंतरण किसी निजी व्यक्ति के पक्ष में नहीं कर सकते ।

11. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इन सभी दलीलों को मान्य ठहराया है और अभिलिखित किया है कि मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए समनुदेशन विलेख, जिसको अभिकथित रूप से मैसर्स कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड द्वारा एक निजी पक्ष-याची (अपीलार्थी) के पक्ष में निष्पादित किया गया है, विधिक रूप से प्रवर्तनीय नहीं है । उनको भारतीय स्टेट बैंक के पक्ष में जारी प्रमाणपत्र के आधार पर निष्पादन मामले में आगे अग्रसर होने का कोई अधिकार नहीं है ।

12. जयेष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता अधिवक्ता श्री अरविन्द श्रीवास्तव द्वारा की गई, ने विद्वान् एकल न्यायाधीश श्री शशि नंदन द्वारा इस प्रकार से अभिलिखित निष्कर्ष को चुनौती देते हुए हमारे समक्ष दलील दी कि 1948 के बैंककारी विनियम अधिनियम या भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा इस अधिनियम के अन्तर्गत विरचित नीति के अन्तर्गत गैर निष्पादनीय आस्तियों, जिनका उल्लेख वसूली प्रमाणपत्र में गैर बैंककारी कंपनी के पक्ष में किया गया है, के अंतरण/समनुदेशन के मामले में ऐसा कोई प्रतिषेध नहीं है । मामले के तथ्यों के अनुसार भारतीय स्टेट बैंक ने आस्तियों का समनुदेशन कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड के पक्ष में कर दिया था जिसने बाद में उन्हीं आस्तियों का समनुदेशन एक निजी पक्ष के पक्ष में कर दिया था । उन्होंने इस प्रतिपादना के समर्थन में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **हरियाणा स्टील एण्ड अलायज लिमिटेड** बनाम **आई. एफ. सी. आई.**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय, विशेष रूप से इस निर्णय के पैरा 16, इसी न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड** बनाम **मैसर्स चोपड़ा फेब्रिकेटर्स एण्ड मैन्युफैक्चर्स (प्राइवेट) लिमिटेड**[2] वाले मामले, विशेष रूप से इस निर्णय के पैरा 21 और साथ ही **आई. सी.**

[1] ए. आई. आर. 2007 दिल्ली 65.

[2] ए. आई. आर. 2011 इलाहाबाद 19.

आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड बनाम **ए. पी. एस. स्टार इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य**[1] के शासकीय परिसमापक वाले मामले, विशेष रूप से इस मामले के पैरा 38 और 44 का अवलंब लिया ।

13. केन्द्रीय बैंककारी और बैंकों के अन्य बैंककारी कारबार और बैंकिंग कम्पनियों को विनियमित करने के लिए दिशा-निर्देश अधिकथित करने की भारतीय रिजर्व बैंक की सक्षमता को उच्चतम न्यायालय द्वारा **आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में स्थरीकृत किया गया है । इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि भारतीय रिजर्व बैंक ने अग्रिमों और पूंजी पर्याप्तता मानकों के मामले में नीति निर्माता की अपनी हैसियत का प्रयोग करते हुए 1949 के बैंककारी विनियम अधिनियम की धारा 6(1) को दृष्टि में रखते हुए एक नीति अधिनियमित की जिसका उद्देश्य बैंककारी कम्पनियों को केन्द्रीय बैंककारी के अतिरिक्त अन्य क्रियाकलापों में संलग्न होने के प्रयोजनार्थ समर्थ बनाना और बैंककारी कारबार का गठन करना है । इसलिए तारीख 13 जुलाई, 2005 के भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों के अधीन विनियमित केन्द्रीय बैंककारी के साथ बैंककारी कारबार के संबंध में दिशा-निर्देश अधिकथित करने की भारतीय रिजर्व बैंक की सक्षमता स्थापित हो जाती है । उच्चतम न्यायालय द्वारा हमारे उद्देश्यों के लिए सुसंगत रिजर्व बैंक आफ इंडिया के तारीख 13 जुलाई, 2005 के दिशा-निर्देशों का उल्लेख अपने **आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले निर्णय में किया गया है, जो इस प्रकार है :–

"गैर निष्पादनीय वित्तीय आस्तियों के क्रय/विक्रय पर दिशा-निर्देश –

(1) यह दिशा-निर्देश अन्य बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों से गैर निष्पादनीय वित्तीय आस्तियों का क्रय/विक्रय करने वाले बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (प्रतिभूतिकरण कंपनियों/पुनर्निर्माण कंपनियों को छोड़कर) पर लागू होंगे ।

(2) इन दिशा-निर्देशों के निबंधनों के अनुसार कोई भी वित्तीय आस्ति, बहुपक्षीय/संघीय बैंकिंग करारों के अधीन आस्तियों को सम्मिलित करते हुए, क्रय/विक्रय के योग्य होगी यदि वह वित्तीय

[1] (2010) 10 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1521.

आस्ति विक्रेता बैंक की पुस्तकों में गैर निष्पादनीय आस्ति/गैर निष्पादनीय निवेश है ।

(3) दिशा-निर्देशों में 'बैंक' के निदेश में वित्तीय संस्थाएं और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां सम्मिलित होंगी ।"

(जोर देने के लिए रेखांकित किया गया ।)

14. नीति का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दिशा-निर्देश स्वयमेव ही उक्त नीति द्वारा आच्छादित बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के मध्य गैर निष्पादनीय आस्तियों की लेने-देन की ही अनुज्ञा प्रदान करते हैं ।

15. इसी प्रकार की मताभिव्यक्ति उच्चतम न्यायालय द्वारा पैरा 38 और 44 में भी की गई है जो हमारे उद्देश्यों के लिए सुसंगत है और जिनको भी नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

"38. 1949 का बैंकिंग विनियम अधिनियम बैंकिंग कारबार को विनियमित किए जाने की ईप्सा करता है । हमारे समक्ष उपस्थित मामलों में हम बैंकिंग की परिभाषा से संबद्ध नहीं हैं बल्कि हम उससे संबद्ध हैं जिससे 'बैंकिंग कारबार' गठित होता है । अतः उक्त 1949 का बैंकिंग विनियम अधिनियम एक सतत प्रकृति का अधिनियम है । यह अधिनियम भारतीय रिजर्व बैंक (अग्रिमों और पूंजी पर्याप्तता मानकों के मामले में विनियामक और नीति निर्माता) को बैंकों को उनके तुलनपत्र (बैंलेन्स शीट) को शुद्ध करने के प्रयोजनार्थ स्वयमेव ही गैर निष्पादनीय आस्तियों का निपटारा करने की अनुज्ञा प्रदान करने के द्वारा एक सशक्त द्वितीयक बाजार को विकसित करने के लिए सशक्त करता है जिसके लिए दिशा-निर्देश/नीति धारा 6(1)(क) सपठित धारा 6(1)(एन) के अधीन अधिकथित है । इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि ऋणों/गैर निष्पादनीय आस्तियों का समनुदेशन कोई ऐसा क्रियाकलाप नहीं है जो 1949 का बैंकिंग विनियम अधिनियम के अन्तर्गत अनुज्ञेय हो ।"

44. अतः, अग्रिमों और पुनर्गठन/गैर निष्पादनीय आस्तियों के प्रबंधन के संबंध में समय-समय पर जारी किए गए भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों के साथ 1949 के बैंकिंग विनियम अधिनियम के उपबंधों को पढ़े जाने पर हमारा यह विचार है कि 1949 का बैंकिंग विनियम अधिनियम बैंकिंग पर एक संपूर्ण संहिता है और बैंकों

द्वारा स्वयमेव ही गैर निष्पादनीय आस्तियों पर विचार किए जाने को दृष्टि में रखते हुए 'बैंकिंग प्रणाली के पुनर्गठन' के बृहत्तर ढांचे पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है । अतः हमको संपत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंधों का अवलोकन करने की आवश्यकता नहीं है । वास्तव में यह उधार लेने वाले (लों) का पक्षकथन है कि उपरोक्त संपत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंध लागू नहीं होते ।

(जोर देने के लिए रेखांकित किया गया ।)

16. इस बात पर जोर दिया गया कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी दिशा-निर्देश अपने आप में संपूर्ण संहिता हैं और यह अपेक्षित नहीं है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंधों का अवलंब लिया जाए । वास्तविकता यह है कि इस बात को पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंध इस मामले पर लागू नहीं होते ।

17. इस पृष्ठभूमि में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विद्वान् एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष को पलटने में बिल्कुल सही था कि ऋण वसूली अधिकरण द्वारा जारी किया गया वसूली प्रमाणपत्र, जिसमें गैर निष्पादनीय आस्ति का समनुदेशन दर्शाया गया और जो बैंकिंग कंपनी के पक्ष में विद्यमान था, का विक्रय/समनुदेशन कड़ाईपूर्वक तारीख 13 जुलाई, 2005 के भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए केवल किसी अन्य बैंकिंग कंपनी के पक्ष में किया जा सकता था ।

18. हमारे विचार में समनुदेशन, जिसका अवलंब अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा अधिकरण के समक्ष कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड के स्थान पर प्रतिस्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यंत दृढ़तापूर्वक लिया गया, तारीख 13 जुलाई, 2005 की भारतीय रिजर्व बैंक की नीति के विपरीत होने के कारण दोषपूर्ण है । अधिकरण ने उक्त अवैध समनुदेशन के आधार पर फाइल की गई निष्पादन कार्यवाही में अपीलार्थी को प्रतिस्थापित किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकृत करके न्यायसंगत कार्य किया है ।

19. हम यहां पर यह अभिलिखित करते हैं कि अपीलार्थी के काउंसेल ने हमारे समक्ष यह दलील दी है कि रिट याचिका में आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण में पारित किया गया है । काउंसेल के पिता अधिकरण के समक्ष निर्धारित तारीख पर अस्वस्थ थे ।

20. इस बात का उल्लेख ऊपर पहले ही किया जा चुका है कि 1949 के बैंकिंग विनियम अधिनियम और तारीख 13 जुलाई, 2005 के

नीतिगत निर्णय को दृष्टि में रखते हुए किसी निजी पक्ष, जो बैंकिंग कम्पनी नहीं है/आस्तियां दिशा-निर्देशों द्वारा आच्छादित नहीं हैं, के पक्ष में जारी किए गए वसूली प्रमाणपत्र द्वारा आच्छादित आस्तियों का समनुदेशन दिशा-निर्देशों के विपरीत होने के कारण दोषपूर्ण है, इसलिए इसका कोई विधिक परिणाम नहीं हो सकता, जहां तक ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों का संबंध है । चूंकि इस मामले के तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए केवल एक ही विचार अर्थात् वसूली प्रमाणपत्र में दर्शित आस्तियों के अंतरण पर विचार का व्यक्त किया जाना संभव है, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि अधिकरण से पुनः सुनवाई का अवसर प्रदान किए जाने का अनुरोध करने के द्वारा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं की जा सकेगी ।

21. यह सुझाव भी दिया गया कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों के पक्ष में एक नया मामला सृजित कर दिया है कि किसी तृतीय निजी पक्ष के पक्ष में जारी किए गए वसूली प्रमाणपत्र में दर्शाई गई आस्तियों का समनुदेशन दोषपूर्ण था किन्तु ऐसा कोई भी पक्षकथन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष नहीं किया गया । हमारे विचार में ऐसे किसी भी आक्षेप में कोई सार नहीं है चूंकि यह याची ही जो एक निजी व्यक्ति है और जिसने रिट न्यायालय की शरण ली और रिट न्यायालय ने अनुतोष प्रदान करने से इनकार करने से पहले मामले के सभी पहलुओं पर न्यायतः विचार किया । उसने न्यायतः अभिनिर्धारित किया है कि याची का पक्षकथन याचित अनुतोष का दावा किए जाने के प्रयोजनार्थ ऊपरनिर्दिष्ट 1949 के बैंकिंग विनियम अधिनियम और तारीख 13 जुलाई, 2005 के नीतिगत निर्णय की परिधि के अन्तर्गत नहीं आता ।

22. पूर्वोक्त कारणोंवश हम इस मामले को इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम के अध्याय 8 नियम 5 के अधीन विचारणार्थ उचित मामला नहीं पाते ।

23. अब यह न्यायालय एक अन्य गंभीर विवाद्यक पर विचार करेगा कि बाकीदार अर्थात् मैसर्स अशोक आयरन एण्ड स्टील रोलिंग मिल्स और उसके निदेशकों के विरुद्ध संस्थित वसूली कार्यवाही में क्या कार्यवाही हुई । क्या यह न्यायालय कार्यवाही को मात्र इस कारणवश कि भारतीय स्टेट बैंक और कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड ने वसूली प्रमाणपत्र द्वारा आच्छादित आस्ति को किसी निजी व्यक्ति को समनुदेशित कर दिया, समाप्ति पर लाए जाने की अनुज्ञा प्रदान कर सकती है ।

24. हमारा निश्चित रूप से विचार है कि भारतीय स्टेट बैंक द्वारा

मैसर्स अशोक आयरन एण्ड स्टील रोलिंग मिल्स और अन्य को वित्तीय आस्तियों के रूप में जो अग्रिम दिए गए थे, वे और कुछ नहीं थे बल्कि लोक धन थे । यदि एक बार भारतीय स्टेट बैंक ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष सफल हो गया और वसूली प्रमाणपत्र जारी कर दिया गया, तो वसूली उस प्रक्रिया का अनुपालन किए जाने के पश्चात् प्रवर्तित की जाएगी, जो 1993 के अधिनियम की धारा 29 को दृष्टि में रखते हुए आयकर की वसूली के संबंध में लागू होती है । हमारे विचार में अधिकरण कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड को कार्यवाही से बाहर होने की अनुज्ञा प्रदान नहीं कर सकता था और उनको आयकर के उपबंधों के अधीन निर्णीत ऋणी के विरुद्ध वसूली प्रमाणपत्र का प्रवर्तन करना चाहिए था ।

25. हम 1997 के ऋण वसूली अधिकरण प्रक्रिया विनियम के अध्याय 15 को भी निर्दिष्ट करते हैं । विनियम 69 से 72 इस प्रकार हैं :–

> "69. वसूली अधिकारी प्रमाणपत्र प्राप्त होने पर पृथक् रूप से इस संबंध में तैयार किए गए रजिस्टर में प्रविष्टियां करेगा ।
>
> 70. यदि (प्रमाणपत्र के अनुसार) सूचना में उल्लिखित रकम का संदाय बाकीदार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर या उस अवधि के भीतर, जैसा कि वसूली अधिकारी अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए प्रदान करे, नहीं किया जाता है, तो वसूली अधिकारी रकम की वसूली के लिए आगे की कार्यवाही करेगा ।
>
> 71. वसूली अधिकारी उसमें निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से मार्गदर्शन प्राप्त करेगा ।
>
> 72. अपील अधिकरण का प्रत्येक आदेश जिसके द्वारा अधिकरण द्वारा जारी किए गए निर्णय/प्रमाणपत्र में कोई उपांतरण, परिवर्द्धन, परिवर्तन किया जाता है, की सूचना वसूली अधिकारी को दी जाएगी ।"

26. अतः हम निर्देशित करते हैं कि ऋण वसूली अधिकरण तारीख 9 अगस्त, 2012 के आदेश के पूर्ववर्ती प्रक्रम से आगे की कार्यवाही आरम्भ करेगा और इस आदेश की प्रमाणित प्रति फाइल किए जाने की तारीख से चार माह के भीतर ऋणी के विरुद्ध वसूली कार्यवाही का प्रवर्तन करेगा । इस संबंध में वसूली गई राशि कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड को अन्तरित की जाएगी । हम यह निर्देश केवल इस कारणवश जारी कर रहे हैं कि हमारा यह विचार है कि यदि याची उस रकम की वसूली करना चाहता है जिसका उसने संदाय समनुदेशन के प्रयोजनार्थ कोटेक महिन्द्रा बैंक

लिमिटेड को किया था, तो वह ऐसा कर सकता है ।

27. हम इस मामले के एक अन्य पहलू को भी उजागर करना चाहते हैं अर्थात् क्या बैंक द्वारा गैर निष्पादनीय आस्तियों का किसी निजी व्यक्ति के पक्ष में अन्तरण संविधान के अनुच्छेद 14 के पुष्टिकरण में किया गया है और वसूली प्रमाणपत्र में दर्शाई गई आस्तियों के समनुदेशन में हितबद्ध समस्त भावी निजी पक्षों को उनके सर्वोत्तम मूल्य का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए था । गैर निष्पादनीय आस्तियों के विक्रय के प्रयोजनार्थ निजी बातचीत के द्वारा बैंक द्वारा किया गया कोई भी प्रयास स्वयमेव ही अवैध होगा । अंततः यह लोक धन है जो व्यर्थ होगा ।

28. हम इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद भी यह मताभिव्यक्ति कर रहे हैं कि जहां तक निजी पक्षों का संबंध है, वे गैर निष्पादनीय आस्तियों में कोई अधिकार नहीं रख सकते, सिवाय रिट याची द्वारा दावाकृत समनुदेशन में किसी अन्य अवैधता के बारे में संकेत करने के ।

29. इस प्रक्रम पर निर्णीत ऋणी के काउंसेल श्री अनिल शर्मा ने निवेदन किया कि चूंकि इस मामले में निजी पक्ष के पक्ष में समनुदेशन किया गया है और कोटेक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड ने अधिकरण के समक्ष वसूली कार्यवाही में कोई मध्यक्षेप नहीं किया, अतः अब इस मामले को समाप्त हो जाना चाहिए और यदि मैसर्स अशोक आयरन एण्ड स्टील रोलिंग मिल्स समनुदेशित आस्तियों को फिर से प्राप्त करना चाहते हैं, तो उनको इस प्रयोजनार्थ सिविल वाद फाइल करना चाहिए ।

30. हमारे विचार में यदि इस प्रकार से दी गई दलीलों को स्वीकार किया जाता है, तो निजी व्यक्ति के पक्ष में किया गया समनुदेशन, जिसको हमने पहले ही दोषपूर्ण अभिनिर्धारित कर दिया है, अप्रत्यक्ष रूप से वैध हो जाएगा । इससे वह उद्देश्य पूर्णतया विफल हो जाएगा जिसके लिए 1993 का ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम निर्मित/प्रवर्तित किया गया । अतः इस दलील को अस्वीकृत किया जाता है ।

31. पूर्वोक्त मताभिव्यक्तियों/निदेशों के साथ यह अपील निस्तारित की जाती है ।

याचिका का निपटारा किया गया ।

अवि.

दामोदर नाइक

बनाम

जोगिन्दर पटेल और एक अन्य

तारीख 9 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति डी. दास

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 38 – स्थायी व्यादेश – वादी द्वारा वाद भूमि पर प्रतिवादी का हस्तक्षेप रोकने के लिए वाद – प्रतिवादी द्वारा वादी के पुत्र से भूमि क्रय करने का कथन किया जाना – विक्रेता द्वारा भूमि का विभाजन कराने का कोई साक्ष्य न होना – मात्र नामांतरण के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि विक्रेता ने पूर्व में कोई विभाजन करा लिया था – वादी व्यादेश के लिए हकदार है ।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – धारा 38 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 102 – स्थायी व्यादेश के लिए वाद – प्रतिवादी द्वारा वादी के पुत्र के हिस्से को खरीदने के आधार पर वाद संपत्ति में अपने अधिकार का दावा किया जाना – प्रतिवादी द्वारा यह मौखिक अभिवाक् किया जाना कि क्रेता ने संपत्ति का विभाजन करा लिया था – सबूत का भार – पक्षकारों के बीच विभाजन का कोई दस्तावेजी सबूत न होना – यह भार प्रतिवादी पर जाता है कि वह यह साबित करे कि भूमि का विभाजन कर लिया गया था ।

प्रत्यर्थी ने वादी के रूप में अपीलार्थी-प्रतिवादी के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), बारगढ़ के न्यायालय में 2007 का सिविल वाद सं. 72 फाइल किया था जिसमें उसने वाद भूमि में प्रतिवादी को प्रवेश करने से रोकने के लिए और तद्द्वारा भूमि पर वादी के कब्जे में कोई बाधा पहुंचाने से रोकने के लिए अनुरोध किया था । वाद खारिज कर दिया गया था । प्रत्यर्थी-वादी ने वाद में असफल होकर ऊपर उल्लिखित प्रथम अपील फाइल की थी । निचले अपील न्यायालय ने अपील मंजूर करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया और अपील मंजूर करते हुए अपीलार्थी-प्रतिवादी सं. 1 को वाद भूमि पर वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकते

हुए वाद डिक्री कर दिया । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन यह अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, बारगढ़ द्वारा 2010 के आर. एफ. ए. सं. 21 में पारित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृततः प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता को संपत्ति के ऊपर कोई अनन्य अधिकार, हक और हित उत्पन्न नहीं हुआ है, जहां यह कहा जाता है कि संपत्ति के मूल स्वामी और काबिज वादी के पिता थे । प्रतिवादी सं. 1 ने उक्त संपत्ति वादी के पुत्र और पौत्र से क्रय की थी । उसका यह पक्षकथन है कि प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता सहित वादी और उसके पुत्रों ने संपत्तियों का विभाजन कर लिया था और वह भूमि जो प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता अर्थात् नरेन्द्र पटेल और उसके पुत्रों द्वारा विक्रीत की गई थी, उनके हिस्से में आबंटित संपत्ति थी । इसे दृष्टिगत करते हुए समान रूप से यह साबित करने का प्रथमतः भार प्रतिवादी सं. 1 पर जाता है कि संपत्तियों का विभाजन वादी और उसके पुत्रों के बीच हो गया था और उस विभाजन में वह भूमि जिसके बारे में प्रतिवादी सं. 1 नरेन्द्र पटेल से क्रय करने का दावा किया गया है, वादी के पुत्र के हिस्से में आबंटित हुई थी और इस प्रकार वह इस संपत्ति पर अनन्य रूप से काबिज था और इसलिए उसने विक्रय के अनुसरण में संपत्ति का कब्जा प्रतिवादी सं. 1 को प्रदत्त किया था । जैसाकि निर्णय से उपदर्शित है कि प्रथम अपील न्यायालय ने साक्ष्य में इन पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की है । वाद भूमि बालेश्वर और उसके भाई मानेश्वर और एक अन्य व्यक्ति नारायण के नाम में अभिलिखित है जैसा कि हक अभिलेख (प्रदर्श-1) में उल्लिखित है । बालेश्वर वादी का पिता है । विभाजन के बिन्दु पर मौखिक साक्ष्य अस्वीकार्य पाया गया है और इसके समर्थन में कोई समकालीन दस्तावेज साबित नहीं किया गया है । प्रदर्श-ए और बी के अनुसार प्रतिवादी सं. 1 के हक में किए गए विक्रय विलेखों में उपदर्शित तथ्य को विभाजन के तथ्य के निश्चायक सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता । (पैरा 13)

नामांतरण के जरिए प्रतिवादी सं. 1 के हक में किया गया वाद भूमि का उल्लेख विभाजन के संबंध में पर्याप्त सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता और उसके विक्रेताओं द्वारा वाद भूमि के पृथक् कब्जे को पूर्व कब्जा नहीं माना जा सकता क्योंकि अभिलेख में यह कहीं उपदर्शित नहीं है कि अधिकार के संबंध में अभिलेख की तैयारी अभिलिखित अभिधारियों की और विशेषतया वादी की, सहमति से की गई थी और न ही यह उपदर्शित किया

गया है कि प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता ही पहले से अभिलिखित अभिधारी थे और कोई नहीं । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए निचले अपील न्यायालय ने विभाजन के तथ्य को साबित करने के लिए प्रतिवादी सं. 1 पर सबूत का भार ठीक ही डाला है जिससे कि वादी व्यादेश की डिक्री के लिए समावेदन कर सके और जिससे कि कुटुंब के अन्य सदस्यों की ओर से विक्रेता का कब्जा सुरक्षित रहे । अभिलेख पर का साक्ष्य असंतोषजनक पाया गया है, इसलिए निचले अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिवादी सं. 1 वादी के पुत्र द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में किए गए विक्रय के अनुसरण में वाद भूमि पर काबिज होने का अधिकारी नहीं है सिवाय वादी के, और जहां ऐसा कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है वहां विभाजन के संबंध में आने वाला साक्ष्य जैसी कि दलील दी गई है, विभाजन के समर्थन में दिया गया कोई साक्ष्य नहीं है । स्वीकृततः प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता को तथाकथित विभाजन के अनुसरण में उसके नाम में अभिलिखित वाद भूमि प्राप्त नहीं हुई थी । यह भी साबित नहीं हुआ है कि नामांतरण कार्यवाही में प्रतिवादी सं. 1 के हक में वाद भूमि का अभिलेख वादी की सहमति से किया गया था । अतः निचले अपील न्यायालय ने यह पाया कि प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता द्वारा वाद भूमि के कब्जे के परिदान के संबंध में साक्ष्य जो उसके अनन्य कब्जे में थी, निश्चायक निष्कर्ष देने के लिए पूर्ण रूप से पर्याप्त नहीं है । अतः न्यायालय को निचले अपील न्यायालय द्वारा प्रथम अपील में निकाले गए अंतिम परिणाम में कोई तथ्यात्मक विधिक अनियमितता प्रतीत नहीं होती । (पैरा 13, 14 और 15)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की आर. एस. ए. सं. 50.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ए. पी. बोस, एन. होता, एस. एस. रौत्रे और वी. कार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री डी. के. ढल, पी. के. ढल और बी. बी. सेनापति

न्यायमूर्ति डी. दास – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन यह अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, बारगढ़ द्वारा 2010 के आर. एफ. ए. सं. 21 में पारित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है ।

2. प्रत्यर्थी ने वादी के रूप में अपीलार्थी-प्रतिवादी के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), बारगढ़ के न्यायालय में 2007 का सिविल वाद सं. 72 फाइल किया था जिसमें उसने वाद भूमि में प्रतिवादी को प्रवेश करने से रोकने के लिए और तद्द्वारा भूमि पर वादी के कब्जे में कोई बाधा पहुंचाने से रोकने के लिए अनुरोध किया था । वाद खारिज कर दिया गया था । प्रत्यर्थी-वादी ने वाद में असफल होकर ऊपर उल्लिखित प्रथम अपील फाइल की थी । निचले अपील न्यायालय ने अपील मंजूर करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया और अपील मंजूर करते हुए अपीलार्थी-प्रतिवादी सं. 1 को वाद भूमि पर वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकते हुए वाद डिक्री कर दिया । जहां तक वाद भूमि का संबंध है विभाजन द्वारा समुचित उपचार प्राप्त करने तक उक्त रोक लगाई गई थी ।

3. सुविधा की दृष्टि से और स्पष्टता की दृष्टि से भ्रम से बचने के लिए एतद्पश्चात् पक्षकारों को उस नाम से निर्दिष्ट किया जा रहा है जैसे कि वे विचारण न्यायालय के समक्ष थे ।

4. वादी का यह पक्षकथन है कि मूल रूप से वाद भूमि के स्वामी और काबिज उसके पिता स्वर्गीय बालेश्वर पटेल थे जिनकी वर्ष 1980 में मृत्यु हो गई । यह अभिकथित किया गया है कि वादी के पिता अभिलिखित अभिधारी थे और भू-राजस्व का संदाय करते थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् वादी ने वाद भूमि के एक भाग में खरीफ की फसल बोई थी और शेष भाग खाली छोड़ दिया था । यह अभिकथित किया गया है कि वाद वर्ष के दौरान जब वह धान की कटाई कर रहा था तो प्रतिवादियों के कुटुंब के सदस्यों ने बाधा डाली और अंततः तारीख 25 नवंबर, 2007 को प्रतिवादी धान काटने के लिए वाद भूमि पर आया और वादी उसे रोकने में सफल हुआ और प्रतिवादी विफल हुआ और इसे दृष्टिगत करते हुए वादी स्थायी व्यादेश के लिए वाद फाइल करने के लिए मजबूर हुआ ।

5. प्रतिवादी सं. 1 ने वाद का विरोध किया और अपने लिखित कथन में यह अभिकथित किया कि वाद भूमि वादी की पैतृक संपत्ति है जो कि कुल 10 एकड़ भूमि है । इस भूमि का 8 वर्ष पूर्व विभाजन हुआ था और तद्नुसार वादी और उसके दो पुत्रों का भाग पृथक् कर दिया गया था और वे तद्नुसार अपने-अपने भाग की भूमि का उपयोग कर रहे थे । प्रतिवादी सं. 1 के पक्षकथनानुसार वाद भूमि नरेन्द्र पटेल के हिस्से में आई थी और चूंकि वह विभाजन में वादी के पुत्रों में से एक था और इसलिए वह इस

भूमि पर अनन्य रूप से काबिज था । यह भी अभिकथन किया गया है कि तारीख 4 सितंबर, 2007 को उक्त नरेन्द्र पटेल ने भूखंड सं. 264 में से 0.42 डेसीमल भूमि मूल्यवान प्रतिफल के बदले विक्रीत कर दी थी जिसके लिए उसने और उसके पुत्रों ने रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किया था और उसके पश्चात् भूखंड सं. 1245 में से 0.68 डेसीमल माप की भूमि भी विक्रीत की थी और भूखंड सं. 1250/1576 में से 0.6 डेसीमल भूमि विक्रीत की थी जिसके लिए उसे पर्याप्त प्रतिफल मिला था और इसके लिए उसने रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख रजिस्ट्रीकृत किया था तथा कब्जा भी प्रदान कर दिया था । यह प्रकथन किया गया है कि इस प्रकार प्रतिवादी सं. 1 उपर्युक्त रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेखों के अधीन खरीदारी करके संपत्ति का स्वामी बन गया था और उस पर काबिज हो गया था और यह कब्जा उसके विक्रेताओं द्वारा उसे प्रदान किया गया था । यह भी प्रकथन किया गया है कि नरेन्द्र पटेल उन भूमियों पर काबिज था जो उसने प्रतिवादी सं. 1 को विक्रीत की थीं और वादी का कभी भी उस पर कब्जा नहीं रहा था । यह कहा गया है कि वाद केवल प्रतिवादी को परेशान करने के लिए फाइल किया गया है ।

6. विचारण न्यायालय ने परस्पर विरोधी अभिवचनों को दृष्टिगत करते हुए 7 विवाद्यक विरचित किए । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 4 और 6 का जो कि स्थायी व्यादेश के अनुतोष के संबंध में वादी की हकदारी से संबंधित थे तथा प्रतिवादियों द्वारा वाद भूमि को क्रय करने तथा काबिज होने से संबंधित थे, साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि वादी इस तथ्य को साबित करने में विफल रहा है कि वह वाद भूमि पर अनन्य रूप से काबिज है और उसके अनुसार प्रतिवादी सं. 1 उसके विक्रेता जो कुटुंब का सदस्य है, के स्थान पर आ जाने के कारण कुटुंब से अपरिचित नहीं है । अतः वे संपत्ति पर संयुक्त रूप से काबिज पाए गए हैं । व्यवहारतः इन निष्कर्षों के आधार पर वाद खारिज कर दिया गया था ।

7. असफल वादी द्वारा निचले अपील न्यायालय के समक्ष अपील किए जाने पर अपील न्यायालय ने यह पाया कि प्रतिवादी सं. 1 ने अन्य हिस्सेदारों की सहमति के बिना संयुक्त कुटुंबीय संपत्ति का एक भाग क्रय किया था । यह अभिनिर्धारित किया गया कि यद्यपि विक्रय सम्पूर्णतः अविधिमान्य नहीं है तथापि, निस्संदेह यह हमारे समक्ष के विक्रेता के भाग की सीमा तक ही विधिमान्य है । यह भी मत व्यक्त किया गया कि

किसी मामले में विक्रय और खरीदारी विनिर्दिष्ट संपत्ति के संबंध में किसी भाग पर प्रवृत्त नहीं कराई जा सकती जैसाकि विक्रय विलेखों में उपदर्शित है जब तक कि चौहद्दी और सीमाएं स्पष्ट न हों और जब तक कि हमारे समक्ष के विक्रेताओं के हक में विनिर्दिष्ट विक्रीत भूमि का आबंटन न हो । इसके पश्चात् विभाजन के तथ्य पर विश्लेषण करने के पश्चात् जैसा कि प्रतिवादी सं. 1 द्वारा अभिवाक् किया गया है, नकारात्मक रूप में उत्तर दिया गया । साक्ष्य के आधार पर यह भी पाया गया कि संपत्ति को चिह्नांकित नहीं किया गया है जिससे कि वर्ष 2007 में प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता द्वारा उसके हक में वाद भूमि के कब्जे के परिदान के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित किया जा सके ।

8. अंततः प्रथम अपील न्यायालय ने उपर्युक्त रूप में निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए इस प्रकार निष्कर्ष निकाला :–

"दूसरे शब्दों में, न केवल अपीलार्थी अपितु सभी सहदायिकों को वाद भूमि पर काबिज समझा जाएगा जिनके बीच कभी भी विभाजन और सीमांकन नहीं हुआ ; वर्ष 2007 में किए गए अभिकथित क्रय को दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थी के पास एकमात्र यह उपचार (विकल्प) रह जाता है कि वह विभाजन के लिए अनुरोध करे और उस अभिकथित सहदायिक के भाग की भूमि का आबंटन कराए जिसने उसे भूमि विक्रीत की थी और उसे आबंटित भागों के विभाजन के समय समायोजित कराए । अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी विभाजन के तथ्य को साबित करने में पूर्णतया विफल रहा है और इसके साथ ही साथ वर्ष 2007 से अनुसूचित वाद भूमि के अनन्य भौतिक कब्जे को साबित करने में भी विफल रहा है और इस प्रकार इस आशय का निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी और अन्य सहदायिक जो अभिकथित विक्रय से व्यथित हुए हैं, प्रत्यर्थी को हस्तक्षेप से रोकने के लिए या स्थायी व्यादेश की डिक्री के अनुरोध द्वारा अनुसूचित वाद भूमि पर हस्तक्षेप को रोकने के अधिकारी होंगे । प्रत्यर्थी के लिए एकमात्र उपचार यह है कि वह पैतृक संपत्ति के विभाजन के लिए वाद संस्थित करे और तब वह विक्रेता सहदायिक के भाग के रूप में आबंटित अनुसूचित वाद भूमि प्राप्त कर सकता है और अंततः अपने हक में समायोजन कराए । उपर्युक्त पहलुओं पर जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया है । अतः यह अभिनिर्धारित किया

गया कि विद्वान् निचले न्यायालय ने वर्ष 2007 के अभिकथित विक्रय की अनदेखी की है और अनुसूचित वाद भूमि के संबंध में स्थायी व्यादेश की डिक्री के लिए अपीलार्थी को इनकार करके गलती की है । दूसरे शब्दों में ऊपर उल्लिखित कारणों से तारीख 18 दिसंबर, 2009 के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता है ।"

9. निचले अपील न्यायालय ने उपर्युक्त निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए यह मत व्यक्त किया कि विचारण न्यायालय का यह मत त्रुटिपूर्ण है कि विक्रेता सहदायिक व्यादेश के लिए वाद में एक आवश्यक पक्षकार था । अतः अपील मंजूर करते हुए निम्नलिखित आदेश पारित किया गया :–

"परिणामतः अपीलार्थी द्वारा फाइल संहिता के आदेश 41, नियम 1 के साथ पठित धारा 96 के अधीन अपील प्रत्यर्थी के विरुद्ध सहमति के आधार पर मंजूर की जाती है । आवश्यक परिणाम के रूप में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), बारगढ़ द्वारा 2007 के सिविल वाद सं. 72 में तारीख 18 दिसंबर, 2009 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं । परिणामत: प्रत्यर्थी को किसी भी रीति में वाद भूमि के ऊपर हस्तक्षेप करने से या उस पर जाने से रोकते हुए स्थायी रूप से व्यादेशित किया जाता है, जब तक कि वह विभाजन द्वारा अपना उपचार प्राप्त न करे । तथापि, मामले की परिस्थितियों में पक्षकारों को आरंभ से ही अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करने का निदेश किया जाता है ।"

10. वर्तमान द्वितीय अपील निम्नलिखित विधि के सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की जाती है :–

"(क) क्या विद्वान् निचला अपील न्यायालय मात्र इस कारण व्यादेश के लिए वाद को ग्रहण करने में सही था कि प्रतिवादी सं. 1 के हक में प्रतिवादी सं. 2 द्वारा किए गए विक्रय को वादी द्वारा आक्षेपित नहीं किया गया था ?

(ख) क्या निचला अपील न्यायालय वादी और प्रतिवादी सं. 2 के बीच विभाजन को साबित करने के लिए प्रतिवादी सं. 1 के ऊपर सबूत का भार डालने में सही था, जहां वादी जिसने संयुक्तता का दावा किया है, इसे साबित करने में विफल रहा है ।"

11. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निचले

अपील न्यायालय को यह निष्कर्ष अभिलिखित करना चाहिए था कि संयुक्त कुटुम्बीय संपत्तियों का विभाजन हो गया था और प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता को उसके भाग की जो भूमि मिली थी वह उसने प्रतिवादी सं. 1 को विक्रीत की थी । उनके अनुसार इस विषय पर निकाला गया निष्कर्ष जैसा कि निचले अपील न्यायालय द्वारा दिया गया है, साक्ष्य का सही और न्यायोचित परिणाम नहीं है । उन्होंने आगे यह दलील दी कि यदि यह कहा जाए कि स्वामियों के बीच चौहद्दी और सीमाओं का विभाजन नहीं हुआ था और जहां तक संयुक्त कुटुम्बीय संपत्तियों का संबंध है, प्रतिवादी सं. 1 ने संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों में से एक की संपत्ति क्रय की है और उसने संयुक्त कब्जे के साथ उसका स्थान ले लिया था और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि चूंकि उसके हक में किए गए विक्रय विलेखों को आक्षेपित नहीं किया गया है, इसलिए वादी के हक में व्यादेश का कोई अनुतोष मंजूर नहीं किया जाना चाहिए । अत: उनके अनुसार प्रत्यर्थी को संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों के बीच संपत्तियों के अंतिम विभाजन तक वाद भूमि पर कब्जा करने से व्यादेशित नहीं किया जाना चाहिए और इसके अनुसरण में वादी को उपचार नहीं मिलना चाहिए । इन सभी कारणों के आधार पर उन्होंने यह दलील दी कि व्यादेश के लिए वाद सामान्यतया पोषणीय न होने के कारण खारिज किया जाना चाहिए । उन्होंने यह भी दलील दी कि निचले न्यायालय ने गलत रूप से प्रतिवादी सं. 1 के ऊपर विभाजन के सबूत का भार डाला है क्योंकि वादी यथा दावा की गई संयुक्तता को साबित करने में विफल रहा है ।

12. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों का समर्थन करते हुए दलीलें दी हैं । उनके अनुसार निचले अपील न्यायालय ने यह ठीक ही घोषित नहीं किया है कि प्रतिवादी सं. 1 के हक में किए गए विक्रय विलेख अविधिमान्य हैं और इसके प्रतिकूल यह अभिनिर्धारित किया है कि विधि की सुस्थापित स्थिति को दृष्टिगत करते हुए विक्रेता सहदायिक के भाग की सीमा तक विक्रय विलेख विधिमान्य माने जाएंगे और अंतिम विभाजन किए जाने तक अंतरण न करने वाले सहदायिकों के कब्जे को ठीक ही संरक्षित किया गया है । अतः यह दलील दी गई है कि निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा की गई गलती को ठीक ही सुधारा है और उनके अनुसार प्रथम अपील का अंतिम परिणाम हस्तक्षेप किए जाने योग्य नहीं है ।

13. स्वीकृततः प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता को संपत्ति के ऊपर कोई अनन्य अधिकार, हक और हित उत्पन्न नहीं हुआ है, जहां यह कहा जाता है कि संपत्ति के मूल स्वामी और काबिज वादी के पिता थे । प्रतिवादी सं. 1 ने उक्त संपत्ति वादी के पुत्र और पौत्र से क्रय की थी । उसका यह पक्षकथन है कि प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता सहित वादी और उसके पुत्रों ने संपत्तियों का विभाजन कर लिया था और वह भूमि जो प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता अर्थात् नरेन्द्र पटेल और उसके पुत्रों द्वारा विक्रीत की गई थी, उनके हिस्से में आबंटित संपत्ति थी । इसे दृष्टिगत करते हुए समान रूप से यह साबित करने का प्रथमतः भार प्रतिवादी सं. 1 पर जाता है कि संपत्तियों का विभाजन वादी और उसके पुत्रों के बीच हो गया था और उस विभाजन में वह भूमि जिसके बारे में प्रतिवादी सं. 1 नरेन्द्र पटेल से क्रय करने का दावा किया गया है, वादी के पुत्र के हिस्से में आबंटित हुई थी और इस प्रकार वह इस संपत्ति पर अनन्य रूप से काबिज था और इसलिए उसने विक्रय के अनुसरण में संपत्ति का कब्जा प्रतिवादी सं. 1 को प्रदत्त किया था । जैसाकि निर्णय से उपदर्शित है कि प्रथम अपील न्यायालय ने साक्ष्य में इन पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की है । वाद भूमि बालेश्वर और उसके भाई मानेश्वर और एक अन्य व्यक्ति नारायण के नाम में अभिलिखित है जैसा कि हक अभिलेख (प्रदर्श-1) में उल्लिखित है । बालेश्वर वादी का पिता है । विभाजन के बिन्दु पर मौखिक साक्ष्य अस्वीकार्य पाया गया है और इसके समर्थन में कोई समकालीन दस्तावेज साबित नहीं किया गया है । प्रदर्श-ए और बी के अनुसार प्रतिवादी सं. 1 के हक में किए गए विक्रय विलेखों में उपदर्शित तथ्य का विभाजन के तथ्य के निश्चायक सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता । नामांतरण के जरिए प्रतिवादी सं. 1 के हक में किया गया वाद भूमि का उल्लेख विभाजन के संबंध में पर्याप्त सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता और उसके विक्रेताओं द्वारा वाद भूमि के पृथक् कब्जे को पूर्व कब्जा नहीं माना जा सकता क्योंकि अभिलेख में यह कहीं उपदर्शित नहीं है कि अधिकार के संबंध में अभिलेख की तैयारी अभिलिखित अभिधारियों की और विशेषतया वादी की, सहमति से की गई थी और न ही यह उपदर्शित किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता ही पहले से अभिलिखित अभिधारी थे और कोई नहीं ।

14. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए निचले अपील न्यायालय ने विभाजन के तथ्य को साबित करने के लिए प्रतिवादी सं. 1 पर सबूत का भार ठीक ही डाला है जिससे कि वादी व्यादेश की डिक्री के लिए समावेदन

कर सके और जिससे कि कुटुंब के अन्य सदस्यों की ओर से विक्रेता का कब्जा सुरक्षित रहे । अभिलेख पर का साक्ष्य असंतोषजनक पाया गया है, इसलिए निचले अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिवादी सं. 1 वादी के पुत्र द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में किए गए विक्रय के अनुसरण में वाद भूमि पर काबिज होने का अधिकारी नहीं है सिवाय वादी के, और जहां ऐसा कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है वहां विभाजन के संबंध में आने वाला साक्ष्य जैसी कि दलील दी गई है, विभाजन के समर्थन में दिया गया कोई साक्ष्य नहीं है । स्वीकृततः प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता को तथाकथित विभाजन के अनुसरण में उसके नाम में अभिलिखित वाद भूमि प्राप्त नहीं हुई थी । यह भी साबित नहीं हुआ है कि नामांतरण कार्यवाही में प्रतिवादी सं. 1 के हक में वाद भूमि का अभिलेख वादी की सहमति से किया गया था । अतः निचले अपील न्यायालय ने यह पाया कि प्रतिवादी सं. 1 के विक्रेता द्वारा वाद भूमि के कब्जे के परिदान के संबंध में साक्ष्य जो उसके अनन्य कब्जे में थी, निश्चायक निष्कर्ष देने के लिए पूर्ण रूप से पर्याप्त नहीं है ।

15. अतः मुझे निचले अपील न्यायालय द्वारा प्रथम अपील में निकाले गए अंतिम परिणाम में कोई तथ्यात्मक विधिक अनियमितता प्रतीत नहीं होती ।

16. उपर्युक्त चर्चा और कारणों को दृष्टिगत करते हुए विधि के सारभूत प्रश्नों का उत्तर प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अपील में कोई बल नहीं है । पक्षकार आरंभ से अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

तपध्यन नेगी

बनाम

राधिका नेगी और एक अन्य

तारीख 21 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति (डा.) ए. के. राठ

हिन्दू दत्तक और भरण पोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) – धारा 10(iv) – दत्तक – 15 वर्ष से अधिक की आयु के बालक का दत्तक ग्रहण – दत्तक पुत्र के नैसर्गिक पिता का यह कथन कि उसने स्कूल में प्रवेश के समय दो वर्ष आयु बढ़ाकर लिखाई थी – विधिमान्यता – स्कूल प्रवेश रजिस्टर में उल्लिखित आयु को प्रमाणिक माना जाएगा – अतः ऐसा दत्तक विधिमान्य नहीं माना जा सकता ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 35 और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 34 – विधिक हैसियत की घोषणा के लिए वाद – ऐसे व्यक्ति द्वारा फाइल नहीं किया जा सकता जो संपत्ति से संबंधित कुटुंब के लिए गैर-व्यक्ति हो ।

वादी का यह पक्षकथन है कि उर्मिला और राधिका-प्रतिवादी सं. 1 स्वर्गीय कन्हई नेगी की विधवाएं हैं । कन्हई की 25-30 वर्ष पहले मृत्यु हो गई थी । कन्हई की मृत्यु के पश्चात् विधवाओं के बीच विभाजन हो गया था । उनके बीच संपत्ति दो समान भागों में बांटी गई थी । कन्हई के कोई संतान नहीं थी । उसकी प्रथम पत्नी उर्मिला ने तारीख 2 जनवरी, 1975 को वादी को दत्तक लिया जिसकी आयु 14 वर्ष थी । इसके पश्चात् वादी को सभी सरकारी अभिलेखों में कन्हई के दत्तक पुत्र के रूप में माना गया था । दत्तक लेने वाली माता उर्मिला ने साक्षियों की उपस्थिति में तारीख 3 जनवरी, 1975 को रजिस्ट्रीकृत दत्तक विलेख निष्पादित किया था । यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 2, प्रतिवादी सं. 1 का दत्तक पुत्र नहीं है । जब प्रतिवादी सं. 2 ने प्रतिवादी सं. 1 की भूमि को कब्जे में लेने का प्रयत्न किया तो वादी के मस्तिष्क में संपत्ति की हकदारी के बारे में संदेह उत्पन्न हुआ । इस तथ्यात्मक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए उसने विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश, सोनपुर के न्यायालय में ऊपर उल्लिखित अनुतोष का अनुरोध करते हुए 1991 का टी. एस. सं. 22 संस्थित किया ।

विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद खारिज कर दिया । वादी ने असफल होकर उक्त निर्णय और डिक्री को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, सोनपुर के समक्ष 94-99 की हकदारी अपील सं. 40/33 में आक्षेपित किया, जो अंततः खारिज की गई । अतः वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादी का यह प्रकथन है कि वह प्रथम पत्नी उर्मिला का दत्तक पुत्र है । यह साबित करने का भार उसके ऊपर जाता है कि वह उर्मिला का दत्तक पुत्र है । हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 10 यह उपबंध करती है कि कोई व्यक्ति तब तक दत्तक लिए जाने योग्य नहीं होगा जब तक कि खंड (i) से (iv) में उल्लिखित शर्तें पूरी न हों । धारा 10 का खंड (iv) यह उपबंध करता है कि वह 15 वर्ष की आयु पूरी नहीं करेगा या नहीं करेगी जब तक कि पक्षकारों को लागू रूढ़ि या रीति जो उन व्यक्तियों को अनुज्ञात करती है जिन्होंने 15 वर्ष की आयु पूरी कर ली है, दत्तक में लागू न की जाए । प्रतिरक्षा साक्षी 2 और 3 सकमा प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक हैं जहां वादी ने अध्ययन किया है । विद्यालय प्रवेश रजिस्टर प्रदर्श-ए के रूप में प्रदर्शित किया गया है । इस रजिस्टर से यह स्पष्ट होता है कि वादी को उसके नैसर्गिक पिता द्वारा तारीख 1 अप्रैल, 1963 को विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया था । दोनों ही साक्षियों ने विद्यालय प्रवेश रजिस्टर का निर्देश करते हुए यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी की जन्म की तारीख 20 अप्रैल, 1957 उल्लिखित की गई थी । अतः जब वादी को तारीख 2 जनवरी, 1975 को दत्तक लिया गया था तो उस समय उसकी आयु 17 वर्ष 8 मास और 12 दिन थी । वादी के नैसर्गिक पिता, अभि. सा. 4 द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण विद्वान् अपील न्यायालय ने नकार दिया था । अभि. सा. 4 ने यह अभिकथन किया है कि उसने स्कूल प्रवेश रजिस्टर में अपने पुत्र की आयु 2 वर्ष बढ़ाकर लिखाई थी । यह बात अभिवचनों में उल्लिखित नहीं है । इसके अतिरिक्त अभि. सा. 4 का कथन असंगत प्रतीत होता है । यदि अभि. सा. 4 के कथन पर विश्वास किया जाए तो वादी भदरब 1961 अर्थात् 1961 के अगस्त मास में उत्पन्न हुआ था । अतः प्रवेश के समय उसकी आयु केवल 1 वर्ष और 8 मास थी । सरकारी स्कूल का प्रधान अध्यापक जन्म की तारीख 2 या 3 वर्ष बढ़ाकर विद्यालय में प्रवेश नहीं दे सकता । यदि अभि. सा. 4 के कथन पर विश्वास किया जाए तो भी दत्तक के समय वादी की आयु 15 वर्ष 8 मास और 12 दिन थी । अतः वादी 2 जनवरी, 1975 को

15 वर्ष से अधिक आयु का था । विद्यालय प्रवेश रजिस्टर साक्ष्य में ग्राह्य है । विद्यालय प्रवेश रजिस्टर में प्रविष्टि का आयु के संबंध में तात्विक महत्व है । विवरण के शीर्षक में और वाद पत्र में आयु के उल्लेख को वादी की आयु के प्रमाणित कथन के रूप में नहीं समझा जा सकता । (पैरा 8)

वादी यह साबित करने में विफल रहा है कि वह उर्मिला का दत्तक पुत्र था । वादी कुटुंब के लिए एक गैर-व्यक्ति है । अतः वह प्रतिवादी सं. 1 द्वारा लिए गए प्रतिवादी सं. 2 के दत्तक को आक्षेपित नहीं कर सकता । पूर्णतया गैर-व्यक्ति जिसका हित दूसरे विधिक व्यक्ति द्वारा प्रभावित नहीं हुआ है या जिसका दूसरे की संपत्ति में कोई हित नहीं है, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के अधीन घोषणा प्राप्त नहीं कर सकता । एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 42 का निर्वचन किया था । विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 42 विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के समरूप है । जो एकमात्र निष्कर्ष निकलता है, यह है कि वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । (पैरा 8, 9 और 10)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1975]	ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1810 : **मैसर्स सुप्रिम जनरल फिल्म्स एक्सचेंज लिमिटेड** बनाम **हिज हाईनेस महाराजा सर ब्रिजनाथ सिंह जी. देव आफ मैहार और अन्य** ।	9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2000 की एस. ए. सं. 146.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री बुद्धिराम दास

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति (डा.) ए. के. राठ – वादी ने यह अपील इस घोषणा के लिए वाद में निर्णय की पुष्टि करने के विरुद्ध फाइल की है कि प्रतिवादी सं. 2, प्रतिवादी सं. 1 का दत्तक पुत्र नहीं है ।

2. वादी का यह पक्षकथन है कि उर्मिला और राधिका-प्रतिवादी सं. 1 स्वर्गीय कन्हई नेगी की विधवाएं हैं । कन्हई की 25-30 वर्ष पहले मृत्यु हो

गई थी । कन्हई की मृत्यु के पश्चात् विधवाओं के बीच विभाजन हो गया था । उनके बीच संपत्ति दो समान भागों में बांटी गई थी । कन्हई के कोई संतान नहीं थी । उसकी प्रथम पत्नी उर्मिला ने तारीख 2 जनवरी, 1975 को वादी को दत्तक लिया जिसकी आयु 14 वर्ष थी । इसके पश्चात् वादी को सभी सरकारी अभिलेखों में कन्हई के दत्तक पुत्र के रूप में माना गया था । दत्तक लेने वाली माता उर्मिला ने साक्षियों की उपस्थिति में तारीख 3 जनवरी, 1975 को रजिस्ट्रीकृत दत्तक विलेख निष्पादित किया था । यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 2, प्रतिवादी सं. 1 का दत्तक पुत्र नहीं है । जब प्रतिवादी सं. 2 ने प्रतिवादी सं. 1 की भूमि को कब्जे में लेने का प्रयत्न किया तो वादी के मस्तिष्क में संपत्ति की हकदारी के बारे में संदेह उत्पन्न हुआ । इस तथ्यात्मक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए उसने विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश, सोनपुर के न्यायालय में ऊपर उल्लिखित अनुतोष का अनुरोध करते हुए 1991 का टी. एस. सं. 22 संस्थित किया ।

3. प्रतिवादियों ने वाद का विरोध किया और अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए संयुक्त लिखित कथन फाइल किया कि वादी उर्मिला का दत्तक पुत्र नहीं है । कोई आदान-प्रदान समारोह नहीं हुआ था । तारीख 2 जनवरी, 1975 को वादी की आयु 15 वर्ष थी । अतः दत्तक, यदि कोई हो, तो वह अकृत और शून्य है । वादी को कभी-भी किसी व्यक्ति द्वारा या किसी सरकारी अभिलेख में कन्हई के दत्तक पुत्र के रूप में नहीं माना गया है । यह भी अभिवाक् किया गया है कि वादी का प्रतिवादी सं. 1 या उर्मिला की संपत्ति में कोई विधिक हक नहीं है । वह एक गैर-व्यक्ति है और उसे प्रतिवादियों की हैसियत को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है और इसलिए वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों पर विचार करने के पश्चात् 5 विवाद्यक विरचित किए । दोनों पक्षकारों ने अपने-अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पेश किया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उर्मिला द्वारा वादी का दत्तक हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 10(iv) के अधीन अधिकथित शर्तों के अतिक्रमण में है । दत्तक शून्य है । इससे दत्तक लेने वाले कुटुंब में कोई अधिकार, हित या हैसियत सृजित नहीं होती । वादी इस कुटुंब के लिए गैर-व्यक्ति है और कन्हई द्वारा छोड़ी गई संपत्ति से उसका कोई संबंध नहीं है और वह उर्मिला का या प्रतिवादी सं. 1 का उत्तराधिकारी नहीं है, उसे यह कहने का कोई प्राधिकार

नहीं है कि प्रतिवादी सं. 2 प्रतिवादी सं. 1 का दत्तक पुत्र है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने उक्त रूप में अभिनिर्धारित करते हुए वाद खारिज कर दिया । वादी ने असफल होकर उक्त निर्णय और डिक्री को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, सोनपुर के समक्ष 94-99 की हकदारी अपील सं. 40/33 में आक्षेपित किया, जो अंततः खारिज की गई ।

5. द्वितीय अपील विधि के उन सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की गई थी जो अपील ज्ञापन के आधार सं. 1, 2 और 3 में उल्लिखित हैं और जो इस प्रकार हैं :–

> "1. क्या विद्वान् निचले न्यायालयों के ये निष्कर्ष कि वादी का दत्तक अविधिमान्य था क्योंकि वह अभिकथित दत्तक के समय 15 वर्ष से अधिक आयु का था, सभी वाद साक्षियों के अकाट्य साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए कायम रखे जाने योग्य हैं, जहां पावती (प्रदर्श-1) विलेख में आयु उल्लिखित है और अभि. सा. 4 द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के साथ वाद पत्र में हकदारी भी उल्लिखित है ?
>
> 2. क्या प्रतिवादी सं. 1 को उसकी सह विधवा द्वारा लिए गए दत्तक को आक्षेपित करने का कोई अधिकार है और क्या ऐसा अभिवाक् परिसीमा विधि द्वारा वर्जित है ?
>
> 3. क्या वादी की जन्म की तारीख के संबंध में अभि. सा. 4 द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा में किया गया स्पष्ट कथन सभी वाद-साक्षियों के साक्ष्य को और वादी द्वारा पेश किए गए दस्तावेजी साक्ष्य को त्यक्त करने के लिए पर्याप्त है ?"

6. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता श्री बुद्धिराम दास को सुना गया । प्रत्यर्थियों की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ ।

7. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता श्री दास ने यह दलील दी कि कन्हई नेगी की दो विधवाएं उर्मिला और राधिका थीं । कन्हई की मृत्यु के पश्चात् उर्मिला ने वादी को दत्तक लिया था । प्रतिवादी सं. 2 प्रतिवादी सं. 1 का दत्तक पुत्र नहीं है । दत्तक के समय वादी की आयु 14 वर्ष थी । दत्तक को तारीख 3 जनवरी, 1975 के रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज द्वारा स्वीकार किया गया था । दत्तक को स्वीकार करने वाले विलेख प्रदर्श-1, वाद पत्र के हक शीर्षक तथा वादी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों के मौखिक साक्ष्य से यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि वादी की आयु दत्तक के समय

14 वर्ष थी । उन्होंने यह भी दलील दी कि वादी के नैसर्गिक पिता की अभि. सा. 4 के रूप में परीक्षा की गई थी । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने स्कूल प्रवेश रजिस्टर में अपने पुत्र की आयु 2 वर्ष बढ़ाकर लिखाई थी जिससे कि उसे शीघ्र सेवा प्राप्त हो सके । विद्वान् निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करने में स्पष्ट अवैधता और अनौचित्यतता कारित की है कि वादी की आयु 17 वर्ष से अधिक थी और इसलिए दत्तक पूर्णतया अविधिमान्य है । संपत्ति की हकदारी के बारे में संदेह उत्पन्न होने पर उसने वाद संस्थित किया ।

8. वादी का यह प्रकथन है कि वह प्रथम पत्नी उर्मिला का दत्तक पुत्र है । यह साबित करने का भार उसके ऊपर जाता है कि वह उर्मिला का दत्तक पुत्र है । हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 10 यह उपबंध करती है कि कोई व्यक्ति तब तक दत्तक लिए जाने योग्य नहीं होगा जब तक कि खंड (i) से (iv) में उल्लिखित शर्तें पूरी न हों । धारा 10 का खंड (iv) यह उपबंध करता है कि वह 15 वर्ष की आयु पूरी नहीं करेगा या नहीं करेगी जब तक कि पक्षकारों को लागू रूढ़ि या रीति जो उन व्यक्तियों को अनुज्ञात करती है जिन्होंने 15 वर्ष की आयु पूरी कर ली है, दत्तक में लागू न की जाए । प्रतिरक्षा साक्षी 2 और 3 सकमा प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक हैं जहां वादी ने अध्ययन किया है । विद्यालय प्रवेश रजिस्टर प्रदर्श-ए के रूप में प्रदर्शित किया गया है । इस रजिस्टर से यह स्पष्ट होता है कि वादी को उसके नैसर्गिक पिता द्वारा तारीख 1 अप्रैल, 1963 को विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया था । दोनों ही साक्षियों ने विद्यालय प्रवेश रजिस्टर का निर्देश करते हुए यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी की जन्म की तारीख 20 अप्रैल, 1957 उल्लिखित की गई थी । अतः जब वादी को तारीख 2 जनवरी, 1975 को दत्तक लिया गया था तो उस समय उसकी आयु 17 वर्ष 8 मास और 12 दिन थी । वादी के नैसर्गिक पिता, अभि. सा. 4 द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण विद्वान् अपील न्यायालय ने नकार दिया था । अभि. सा. 4 ने यह अभिकथन किया है कि उसने स्कूल प्रवेश रजिस्टर में अपने पुत्र की आयु 2 वर्ष बढ़ाकर लिखाई थी । यह बात अभिवचनों में उल्लिखित नहीं है । इसके अतिरिक्त अभि. सा. 4 का कथन असंगत प्रतीत होता है । यदि अभि. सा. 4 के कथन पर विश्वास किया जाए तो वादी भदरब 1961 अर्थात् 1961 के अगस्त मास में उत्पन्न हुआ था । अतः प्रवेश के समय उसकी आयु केवल 1 वर्ष और 8 मास थी । सरकारी स्कूल का प्रधान अध्यापक जन्म की

तारीख 2 या 3 वर्ष बढ़ाकर विद्यालय में प्रवेश नहीं दे सकता । यदि अभि. सा. 4 के कथन पर विश्वास किया जाए तो भी दत्तक के समय वादी की आयु 15 वर्ष 8 मास और 12 दिन थी । अतः वादी 2 जनवरी, 1975 को 15 वर्ष से अधिक आयु का था । विद्यालय प्रवेश रजिस्टर साक्ष्य में ग्राह्य है । विद्यालय प्रवेश रजिस्टर में प्रविष्टि का आयु के संबंध में तात्विक महत्व है । विवरण के शीर्षक में और वाद पत्र में आयु के उल्लेख को वादी की आयु के प्रमाणित कथन के रूप में नहीं समझा जा सकता । वादी यह साबित करने में विफल रहा है कि वह उर्मिला का दत्तक पुत्र था । वादी कुटुंब के लिए एक गैर- व्यक्ति है । अतः वह प्रतिवादी सं. 1 द्वारा लिए गए प्रतिवादी सं. 2 के दत्तक को आक्षेपित नहीं कर सकता ।

9. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मैसर्स सुप्रिम जनरल फिल्म्स एक्सचेंज लिमिटेड** बनाम **हिज हाईनेस महाराजा सर ब्रिजनाथ सिंह जी देव आफ मैहार और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि पूर्णतया गैर-व्यक्ति जिसका हित दूसरे विधिक व्यक्ति द्वारा प्रभावित नहीं हुआ है या जिसका दूसरे की संपत्ति में कोई हित नहीं है, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के अधीन घोषणा प्राप्त नहीं कर सकता । उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 42 का निर्वचन किया था । विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 42 विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के समरूप है ।

10. जो एकमात्र निष्कर्ष निकलता है यह है कि वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । दोनों निचले न्यायालयों ने अभिलेख पर के अभिवचनों और साक्ष्य के आधार पर वादी के दत्तक के अभिवाक् को नकार दिया है । निचले न्यायालयों के निष्कर्षों में कोई अनुचितता या अवैधता नहीं है । विधि के सारभूत प्रश्नों का तद्नुसार उत्तर दिया जाता है ।

11. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए अपील में कोई बल नहीं है और इसलिए खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार अपील खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1810.

सोनल

बनाम

दीपक खन्ना और एक अन्य

तारीख 13 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा और न्यायमूर्ति शरद कुमार शर्मा

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) – धारा 25 और घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) – धारा 23 – अवयस्क बालक की संरक्षकता – माता द्वारा संरक्षकता के लिए दावा – पिता द्वारा, माता द्वारा घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन फाइल आवेदन के लंबन का आश्रय लिया जाना – वर्जन – संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन संरक्षकता के लिए फाइल आवेदन को घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन फाइल आवेदन विवर्जित नहीं करता – अतः, ऐसे आवेदन पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाना चाहिए ।

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 – धारा 25 – अवयस्क की संरक्षकता के लिए आवेदन – न्यायालय द्वारा वादी और प्रतिवादी द्वारा किए गए अभिकथनों और प्रति-अभिकथनों को विचार में लेकर निष्कर्ष निकाला जाना – अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करते समय न्यायालय को ऐसे अभिकथनों को विचार में लेने के बजाय बच्चे के कल्याण पर विचार करना चाहिए ।

अपीलार्थी-पत्नी द्वारा फाइल की गई इस अपील में अपर न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रुड़की, जिला हरिद्वार द्वारा तारीख 16 अगस्त, 2016 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 10 के साथ पठित धारा 25 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए आवेदन खारिज किया है और तद्द्वारा अपीलार्थी को उसके अवयस्क पुत्र आरव की संरक्षकता देने से इनकार किया है । अपीलार्थी ने तारीख 8 अक्तूबर, 2016 को निचले न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था जिसमें उसने अपने अवयस्क पुत्र अर्थात् आरव की संरक्षकता के लिए अनुरोध किया था । वाद पत्र में ये अभिकथन किए गए हैं कि उसके विवाह के परिणामस्वरूप पुत्र

आरव का जन्म हुआ था जिसकी आयु संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 10 के साथ पठित धारा 25 के अधीन कार्यवाहियां संस्थित करने के समय केवल 4 वर्ष थी । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि वह बच्चे की माता और नैसर्गिक संरक्षक होने के कारण बच्चे का कल्याण उसकी संरक्षकता में है । प्रत्यर्थी को बच्चे की संरक्षकता में देना सुरक्षित नहीं है क्योंकि प्रत्यर्थी ने बच्चे की संरक्षकता बलपूर्वक ले ली है और वह उसके साथ अमानवीय व्यवहार करता है । अपीलार्थी-पत्नी ने धारा 25 के अधीन फाइल आवेदन की खारिजी से व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आक्षेप के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी सं. 1 ने आवेदन या आक्षेप की सत्यता के संबंध में अभिकथन किए बिना घरेलू हिंसा अधिनियमम की धारा 23 के अधीन कार्यवाही में पारित निर्णय के प्रभाव का फायदा लेने का प्रयत्न किया था । प्रत्यर्थी के अनुसार घरेलू हिंसा अधिनियम कार्यवाहियों का प्रभाव यह होगा कि वह संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों के ऊपर अभिभावी होंगी । उसने यह दलील दी कि घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन अभिरक्षा से इनकार का स्वतः यह परिणाम होगा कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन खारिज किया जाएगा । निचले न्यायालय द्वारा तारीख 16 अगस्त, 2016 के आक्षेपित आदेश द्वारा माता (न्यायालय के समक्ष की अपीलार्थी) द्वारा फाइल किए गए आवेदन को खारिज करते समय इस दलील को विचार में लिया गया था । आक्षेपित निर्णय निम्नलिखित कारणों से कायम रखा नहीं जा सकता – (i) विधान-मंडल ने अपनी प्रज्ञा से दो स्वतंत्र अधिनियम अर्थात् संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 तथा घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 विरचित किए हैं । ये दोनों ही विधान भिन्न-भिन्न उद्देश्य प्राप्त करने के लिए बनाए गए हैं । चूंकि इन दोनों विधानों का प्रयोजन और आशय अपने-अपने एस. ओ. आर. के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं इसलिए वे इनमें से किसी के भी अधीन उपबंधित कार्यवाहियां किसी भी रीति में अभिभावी नहीं होंगे । (ii) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के अधीन प्राथमिक उद्देश्य यह है कि स्त्रियों के अधिकरों का प्रभावी रूप से संरक्षण किया जाए, जैसाकि संविधान के अधीन गारंटीकृत है कि उन्हें कुटुंब के भीतर होने वाली हिंसा से आहत होने से बचाया जाए, जबकि इसके प्रतिकूल संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन न्यायालयों पर यह जिम्मेदारी डालना आशयित है कि वे बच्चे के कल्याण

को सुनिश्चित करें और इसलिए न्यायालयों को इस पर विचार करना आवश्यक है, जब वे धारा 25 के अधीन आवेदन पर विचार करें । (iii) घरेलू हिंसा अधिनियम के अधीन बच्चे की तब अभिरक्षा प्रदान करना आशयित है जब अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां लंबित हों । यह उपचार केवल अंतरिम उपचार के रूप में अनुध्यात है और यह घरेलू हिंसा किए जाने के अध्यधीन है । जबकि इसके प्रतिकूल संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 अंतरिम अभिरक्षा से संबंधित नहीं है और इसके बजाय यह इस बात के लिए आशयित है कि पति या पत्नी अथवा संरक्षक की अभिरक्षा से बच्चे को दूर रखा जाए और बच्चे के कल्याण को विचार में लिया जाए और उस व्यक्ति को अभिरक्षा दी जाए जिसके लिए न्यायालय बच्चे का हित महसूस करता हो । अतः प्रयोजन पूर्णतया भिन्न है । (iv) उस समय जब आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, तथ्यतः घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन कोई आदेश विद्यमान नहीं था और केवल इस कारण कि धारा 23 के अधीन आवेदन लंबित था, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन पर आदेश पारित किया जाना निलंबित किया गया था । प्रत्यर्थी द्वारा आक्षेप किए जाने का केवल यह प्रभाव हुआ था कि समान अनुतोष के लिए धारा 23 के अधीन आवेदन लंबित है । अतः निचले न्यायालय द्वारा दिए गए उस तर्क के कारण आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं है । घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन आवेदन का लंबन संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन पर विचार करने के लिए कोई वर्जन सृजित नहीं कर सकता, इसलिए दिया गया कारण पूर्ण रूप से अस्वीकार किए जाने योग्य है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने प्रति-शपथपत्र के उपाबंध-3 का अवलंब लिया है जिसके बारे में यह कहा गया है कि यह अपीलार्थी द्वारा थाना अधिकारी, कोतवाली, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश को भेजा गया एक परिवाद है । उन्होंने इस पत्र का इस आधार पर अवलंब लिया है कि उक्त पत्र से यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसने प्रत्यर्थी सं. 1 के कुटुंब पर अत्याचार किया है जहां उसने अपनी व्यथा व्यक्त की है और साथ रहने की अपनी इच्छा उपदर्शित की है । इस पत्र का इस कारण से अवलंब नहीं लिया जा सकता कि यह एक ऐसा पत्र है जो पुलिस अधीक्षक को स्पीड पोस्ट द्वारा भेजा गया है और जो किसी भी व्यक्ति के नाम पर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा भेजा जा सकता है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह पत्र अपीलार्थी द्वारा ही भेजा गया था क्योंकि इस पर

प्राप्ति का कोई पृष्ठांकन नहीं है । इसके अतिरिक्त इस पर पृष्ठ के नीचे की ओर हस्ताक्षर किए गए हैं जो किसी कारण से अंतर्वेशित प्रतीत होते हैं क्योंकि "भवदीया" स्थान पर कोई हस्ताक्षर अंकित नहीं है और यह प्रक्षिप्त है क्योंकि परिवाद के भिन्न भाग पर हस्ताक्षर किया जाना प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त इस परिवाद पर पुलिस अधीक्षक, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश द्वारा प्राप्ति का कोई पृष्ठांकन नहीं किया गया है । (पैरा 7, 8, 11 और 12)

निचले न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त इस मत को दृष्टिगत करते हुए कि चूंकि बच्चा एक वर्ष से प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ रह रहा है, स्वतः अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा से इनकार करने के लिए कोई पर्याप्त आधार प्रतीत नहीं होता है क्योंकि बच्चे को माता-पिता दोनों की देखभाल और स्नेह की आवश्यकता होती है और वह देखभाल और स्नेह जिसकी बच्चा प्रत्याशा करता है, किसी अन्य बात के मुकाबले अधिक महत्वपूर्ण है । अभिकथनों से संबंधित निष्कर्ष और अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा किए गए प्रति अभिकथन ऐसे विवाद्यक नहीं हैं जिनका विनिश्चय किए जाने की आवश्यकता हो या विचार में लिए जाने की आवश्यकता हो, जब संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन का विनिश्चय किया जाए । अतः न्यायालय का यह मत है कि तारीख 16 अगस्त, 2016 का आक्षेपित आदेश पूर्णतया अनुचित है और विवेक का प्रयोग किए बिना पारित किया गया है और अभिलेखों के प्रतिकूल है तथा ऐसे तथ्य पर आधारित है जो धारा 25 की परिधि के भीतर नहीं आता । अतः तारीख 16 अगस्त, 2016 का आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है । अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन कागज सं. 6-क मंजूर किया जाता है और अवयस्क आरव की अंतरिम अभिरक्षा अपीलार्थी को मंजूर की जाती है जो माता होने के नाते अवयस्क की बेहतर संरक्षक होगी और धारा 25 के अधीन कार्यवाहियों के अंतिम निपटान तक आदेश प्रवृत्त रहेगा । तथापि, पिता की भावनात्मक अनुरक्ति को दृष्टिगत करते हुए उसे निचले न्यायालय द्वारा नियत प्रत्येक तारीख को न्यायालय परिसर में दो बजे अपराह्न से 4 बजे अपराह्न के बीच आरव से मिलने की इजाजत दी जाती है । (पैरा 13, 14 और 15)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की अपील सं. 625.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मोहम्मद सफदर

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री वी. के. गुगलानी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति शरद कुमार शर्मा ने दिया ।

न्या. शर्मा – अपीलार्थी-पत्नी द्वारा फाइल की गई इस अपील में अपर न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रुड़की, जिला हरिद्वार द्वारा तारीख 16 अगस्त, 2016 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 10 के साथ पठित धारा 25 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए आवेदन खारिज किया है और तद्द्वारा अपीलार्थी को उसके अवयस्क पुत्र आरव की संरक्षकता देने से इनकार किया है ।

2. अपीलार्थी ने तारीख 8 अक्तूबर, 2016 को निचले न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था जिसमें उसने अपने अवयस्क पुत्र अर्थात् आरव की संरक्षकता के लिए अनुरोध किया था । वादपत्र में ये अभिकथन किए गए हैं कि उसके विवाह के परिणामस्वरूप पुत्र आरव का जन्म हुआ था जिसकी आयु संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 10 के साथ पठित धारा 25 के अधीन कार्यवाहियां संस्थित करने के समय केवल 4 वर्ष थी । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि वह बच्चे की माता और नैसर्गिक संरक्षक होने के कारण बच्चे का कल्याण उसकी संरक्षकता में है । प्रत्यर्थी को बच्चे की संरक्षकता में देना सुरक्षित नहीं है क्योंकि प्रत्यर्थी ने बच्चे की संरक्षकता बलपूर्वक ले ली है और वह उसके साथ अमानवीय व्यवहार करता है ।

3. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 1 का विवाह तारीख 15 जनवरी, 2011 को संपन्न हुआ था और अपीलार्थी के अनुसार उसके पिता की जो ओ. एन. जी. सी. के कर्मचारी हैं, श्री सुरेन्द्र खन्ना के साथ मित्रता हो गई थी जो दीपक खन्ना (हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी सं. 1) के ब्रदर-इन-ला (बहनोई/साला) है । अपीलार्थी अक्सर देहरादून जाती थी और परिणामस्वरूप उनके बीच प्रेम हो गया और विवाह तय हो गया । विवाह की बातचीत के दौरान प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा यह बताया गया था कि उसके पास एम. कॉम और एम. बी. ए. की डिग्री है और वह बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्य कर रहा है और 35,000/- रुपए प्रतिमास उपार्जित कर रहा है । प्रत्यर्थी सं. 1 की बहन अर्थात् बबली और उसके बहनोई सुरेन्द्र खन्ना ने अपीलार्थी को धोखे में रखकर विश्वास में लिया और प्रत्यर्थी सं. 1 की शैक्षिक हैसियत के बारे में विश्वास दिलाते हुए षड्यंत्र रचा और उसका विवाह करा दिया ।

4. अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि विवाह के कुछ दिनों के पश्चात्

प्रत्यर्थी सं. 1 और उसके परिवार के लोगों ने परेशान करना आरंभ कर दिया और वे 10 लाख रुपए की मांग करने लगे । अपीलार्थी ने अपने आवेदन में यह कथन किया है कि आरव (हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी सं. 2) का जन्म तारीख 25 दिसंबर, 2011 को हुआ था और क्रूरता बरतने और कुटुंब द्वारा लगातार परेशान किए जाने के कारण जो कि 2012-13 तक चलता रहा, प्रत्यर्थी सं. 1, प्रत्यर्थी सं. 2 को अक्सर मारता पीटता था जिसके कारण उसे कई बार क्षतियां पहुंचीं । अतः उसने आवेदन में अनुरोध किया कि बच्चे का भविष्य माता के पास रहकर पूर्णतया सुरक्षित रहेगा जो कि नैसर्गिक संरक्षक है । इसके अतिरिक्त वह उपार्जन का स्वतंत्र स्रोत रखती है और प्रत्यर्थी सं. 1 का कुटुंब कोई सहायता नहीं करता है जिसमें बच्चे का हित सुरक्षित रह सके क्योंकि बच्चे की देखभाल पिता के पास रहकर नहीं हो सकती ।

5. प्रत्यर्थी सं. 1 ने आक्षेप फाइल करके आवेदन का विरोध किया । उसने बच्चे की अभिरक्षा प्राप्त करने के लिए अपीलार्थी द्वारा लिए गए आधारों से पूर्णतया इनकार किया । तथापि, विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने तारीख 16 अगस्त, 2016 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा आवेदन खारिज कर दिया, अतः वर्तमान अपील फाइल की गई है । प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा आक्षेपित आधारों का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि ये आक्षेप दो आधारों पर किए गए हैं :–

(i) उसने अर्थात् अपीलार्थी ने पुलिस कर्मचारियों को दिए गए आवेदन में अपनी गलतियां स्वीकार की थीं ; और

(ii) उसने ये गलतियां भविष्य में न दोहराने का आश्वासन दिया था ।

6. इसके अतिरिक्त उसने यह भी आधार लिया कि घरेलू हिंसा अधिनियम के अधीन समवर्ती कार्यवाही में अपीलार्थी का आरव की अंतरिम अभिरक्षा लेने के लिए आवेदन तारीख 30 अक्तूबर, 2016 को खारिज कर दिया गया था । 2016 के दांडिक मामला सं. 15 में जिसके द्वारा घरेलू हिंसा अधिनियम के अधीन तारीख 3 अक्तूबर, 2016 के आदेश को आक्षेपित किया गया था, न्यायालय ने धारा 23 के अधीन अभिरक्षा देने से इनकार कर दिया था और अपील में, अपील न्यायालय द्वारा अपील खारिज करके आदेश की पुष्टि की गई थी ।

7. आक्षेप के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी सं. 1

ने आवेदन या आक्षेप की सत्यता के संबंध में अभिकथन किए बिना घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन कार्यवाही में पारित निर्णय के प्रभाव का फायदा लेने का प्रयत्न किया था । प्रत्यर्थी के अनुसार घरेलू हिंसा अधिनियम कार्यवाहियों का प्रभाव यह होगा कि वह संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों के ऊपर अभिभावी होंगी । उसने यह दलील दी कि घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन अभिरक्षा से इनकार का स्वतः यह परिणाम होगा कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन खारिज किया जाएगा ।

8. निचले न्यायालय द्वारा तारीख 16 अगस्त, 2016 के आक्षेपित आदेश द्वारा माता (हमारे समक्ष की अपीलार्थी) द्वारा फाइल किए गए आवेदन को खारिज करते समय इस दलील को विचार में लिया गया था । आक्षेपित निर्णय निम्नलिखित कारणों से कायम रखा नहीं जा सकता :–

(i) विधान-मंडल ने अपनी प्रज्ञा से दो स्वतंत्र अधिनियम अर्थात् संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 तथा घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 विरचित किए हैं । ये दोनों ही विधान भिन्न-भिन्न उद्देश्य प्राप्त करने के लिए बनाए गए हैं । चूंकि इन दोनों विधानों का प्रयोजन और आशय अपने-अपने एस. ओ. आर. के अनुसार भिन्न-भिन्न है इसलिए वे इनमें से किसी के भी अधीन उपबंधित कार्यवाहियां किसी भी रीति में अभिभावी नहीं होंगे ।

(ii) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के अधीन प्राथमिक उद्देश्य यह है कि स्त्रियों के अधिकारों का प्रभावी रूप से संरक्षण किया जाए, जैसाकि संविधान के अधीन गारंटीकृत है कि उन्हें कुटुंब के भीतर होने वाली हिंसा से आहत होने से बचाया जाए, जबकि इसके प्रतिकूल संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन न्यायालयों पर यह जिम्मेदारी डालना आशयित है कि वे बच्चे के कल्याण को सुनिश्चित करें और इसलिए न्यायालयों को इस पर विचार करना आवश्यक है, जब वे धारा 25 के अधीन आवेदन पर विचार करें ।

(iii) घरेलू हिंसा अधिनियम के अधीन बच्चे की तब अभिरक्षा प्रदान करना आशयित है जब अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां लंबित हों । यह उपचार केवल अंतरिम उपचार के रूप में अनुध्यात है और यह घरेलू हिंसा किए जाने के अध्यधीन है । जबकि इसके प्रतिकूल

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 अंतरिम अभिरक्षा से संबंधित नहीं है और इसके बजाय यह इस बात के लिए आशयित है कि पति या पत्नी अथवा संरक्षक की अभिरक्षा से बच्चे को दूर रखा जाए और बच्चे के कल्याण को विचार में लिया जाए और उस व्यक्ति को अभिरक्षा दी जाए जिसके लिए न्यायालय बच्चे का हित महसूस करता हो । अत: प्रयोजन पूर्णतया भिन्न है ।

(iv) उस समय जब आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, तथ्यतः घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन कोई आदेश विद्यमान नहीं था और केवल इस कारण कि धारा 23 के अधीन आवेदन लंबित था, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन पर आदेश पारित किया जाना निलंबित किया गया था । प्रत्यर्थी द्वारा आक्षेप किए जाने का केवल यह प्रभाव हुआ था कि समान अनुतोष के लिए धारा 23 के अधीन आवेदन लंबित है । अतः निचले न्यायालय द्वारा दिए गए उस तर्क के कारण आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

9. जब आज अर्थात् तारीख 30 जून, 2017 को मामला सुनवाई के लिए पेश हुआ तो अपील के पक्षकार (प्रत्यर्थी सं. 2 को छोड़कर) वैयक्तिक रूप से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और उन्हें न्यायालय द्वारा अपने-अपने पक्षकथन पेश करने के लिए अनुज्ञात किया गया । इसके अतिरिक्त पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को भी सुना गया ।

10. काउंसेलों की उपस्थिति में अपीलार्थी ने यह बताया कि वह कॉक्स एंड किंग्स नामक कंपनी में कार्य कर रही है और वह 30,000/- रुपए प्रतिमास उपार्जित करती है । पति से यह समान प्रश्न करने पर कि वह कितना कमाता है, उसने यह बताया कि वह प्राइवेट ट्यूशन करता है और 30,000/- रुपए कमाता है तथापि, उसने अपने उपार्जन को उपदर्शित करने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया । अतः अपीलार्थी के इस विनिर्दिष्ट कथन को, वह कॉक्स एंड किंग्स कंपनी में नियुक्त है, यदि प्रत्यर्थी के इस कथन के मुकाबले स्वीकार कर लिया जाए कि वह प्राइवेट ट्यूशन करता है, किसी साक्ष्य द्वारा साबित नहीं किया जा सकता । यह पूछे जाने पर कि क्या वह आयकर विवरणी फाइल करता है, उसने अस्पष्ट उत्तर देते हुए आयकर जमा करने और विवरणी फाइल करने के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट कथन नहीं किया ।

11. जैसाकि संप्रेषण किया गया है कि घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के अधीन आवेदन का लंबन संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन पर विचार करने के लिए कोई वर्जन सृजित नहीं कर सकता, इसलिए दिया गया कारण पूर्ण रूप से अस्वीकार किए जाने योग्य है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने प्रति-शपथपत्र के उपाबंध-3 का अवलंब लिया है जिसके बारे में यह कहा गया है कि यह अपीलार्थी द्वारा थाना अधिकारी, कोतवाली, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश को भेजा गया एक परिवाद है । उन्होंने इस पत्र का इस आधार पर अवलंब लिया है कि उक्त पत्र से यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसने प्रत्यर्थी सं. 1 के कुटुंब पर अत्याचार किया है जहां उसने अपनी व्यथा व्यक्त की है और साथ रहने की अपनी इच्छा उपदर्शित की है । इस पत्र का इस कारण से अवलंब नहीं लिया जा सकता कि यह एक ऐसा पत्र है जो पुलिस अधीक्षक को स्पीड पोस्ट द्वारा भेजा गया है और जो किसी भी व्यक्ति के नाम पर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा भेजा जा सकता है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह पत्र अपीलार्थी द्वारा ही भेजा गया था क्योंकि इस पर प्राप्ति का कोई पृष्ठांकन नहीं है ।

12. इसके अतिरिक्त इस पर पृष्ठ के नीचे की ओर हस्ताक्षर किए गए हैं जो किसी कारण से अंतर्वेशित प्रतीत होते हैं क्योंकि "भवदीया" स्थान पर कोई हस्ताक्षर अंकित नहीं है और यह प्रक्षिप्त है क्योंकि परिवाद के भिन्न भाग पर हस्ताक्षर किया जाना प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त इस परिवाद पर पुलिस अधीक्षक, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश द्वारा प्राप्ति का कोई पृष्ठांकन नहीं किया गया है ।

13. निचले न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त इस मत को दृष्टिगत करते हुए चूंकि बच्चा एक वर्ष से प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ रह रहा है, स्वतः अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा से इनकार करने के लिए कोई पर्याप्त आधार प्रतीत नहीं होता है क्योंकि बच्चे को माता-पिता दोनों की देखभाल और स्नेह की आवश्यकता होती है और वह देखभाल और स्नेह जिसकी बच्चा प्रत्याशा करता है, किसी अन्य बात के मुकाबले अधिक महत्वपूर्ण है ।

14. अभिकथनों से संबंधित निष्कर्ष और अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा किए गए प्रति अभिकथन ऐसे विवाद्यक नहीं हैं जिनका विनिश्चय किए जाने की आवश्यकता हो या विचार में लिए जाने की आवश्यकता हो, जब संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन का

विनिश्चय किया जाए । अतः हमारा यह मत है कि तारीख 16 अगस्त, 2016 का आक्षेपित आदेश पूर्णतया अनुचित है और विवेक का प्रयोग किए बिना पारित किया गया है और अभिलेखों के प्रतिकूल है तथा ऐसे तथ्य पर आधारित है जो धारा 25 की परिधि के भीतर नहीं आता । अतः तारीख 16 अगस्त, 2016 का आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है ।

15. अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन कागज सं. 6-क मंजूर किया जाता है और अवयस्क आरव की अंतरिम अभिरक्षा अपीलार्थी को मंजूर की जाती है जो माता होने के नाते अवयस्क की बेहतर संरक्षक होगी और धारा 25 के अधीन कार्यवाहियों के अंतिम निपटान तक आदेश प्रवृत्त रहेगा । तथापि, पिता की भावनात्मक अनुरक्ति को दृष्टिगत करते हुए उसे निचले न्यायालय द्वारा नियत प्रत्येक तारीख को न्यायालय परिसर में दो बजे अपराह्न से 4 बजे अपराह्न के बीच आरव से मिलने की इजाजत दी जाती है ।

16. यह न्यायालय यह भी महसूस करता है कि निचले न्यायालय को यह कहा जाए कि वह संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के साथ पठित धारा 10 के अधीन मुख्य कार्यवाहियों का अनावश्यक स्थगन मंजूर किए बिना, अधिमानतः आदेश की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति की तारीख से 4 मास की अवधि के भीतर विनिश्चय करे ।

17. रजिस्ट्री (कार्यालय) को यह निदेश दिया जाता है कि वह इस आदेश की प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए और उपर्युक्त रूप में अनुज्ञात मिलने के घंटों के दौरान बच्चे की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए निचले न्यायालय को भेजे ।

18. अपील उपर्युक्त संप्रेक्षणों के अध्यधीन मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

राजेश कुमार और अन्य

बनाम

उत्तराखंड राज्य और अन्य

तारीख 1 अगस्त, 2017

मुख्य न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ और न्यायमूर्ति वी. के. विष्ट

सामान्य खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10) – धारा 10 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 4 और 10] – अपील फाइल किए जाने की परिसीमा की संगणना – न्यायालय के अवकाश के दौरान बंद रहने के कारण परिसीमा के प्रयोजनार्थ अवधि का व्यतीत हो जाना, यद्यपि मामला फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ रजिस्ट्री खुली हुई थी – चूंकि न्यायालय के बन्द रहने की अवधि के दौरान रजिस्ट्री खुली हुई थी और मूल, अपीली, पुनरीक्षण, सिविल या रिट अधिकारिता से संबंधित नए मामले फाइल किए गए थे, अपीलार्थी का यह कर्तव्य था कि वह परिसीमा की विहित अवधि के भीतर अपील फाइल करता और इन परिस्थितियों में वह परिसीमा की अवधि के विस्तार का लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि इस न्यायालय की रजिस्ट्री में यह विशेष अपील शीतकालीन अवकाश के अंतिम दिवस को तारीख 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई । समय सीमा की विहित अवधि नकल तैयार किए जाने वाले दो दिनों को अपवर्जित किए जाने के पश्चात् भी तारीख 6 फरवरी, 2017 को व्यतीत हो चुकी थी । अतः अपील को तीन दिनों की समय सीमा द्वारा बाधित पाया गया । हमको सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करना चाहिए कि इस मामले में परिसीमा की अवधि तब व्यतीत हुई । किसी विशेष अपील को फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ 30 दिन की अवधि उपबंधित की गई है । इस मामले में निर्णय तारीख 5 जनवरी, 2017 को पारित किया गया था । अपीलार्थियों ने निर्णय की प्रति के लिए अगले दिन अर्थात् 6 जनवरी, 2017 को आवेदन किया । निर्णय की प्रति तारीख 7 जनवरी, 2017 को तैयार हो गई थी । निर्णय की प्रति तारीख 10 जनवरी, 2017 को प्राप्त की गई । स्वीकृत रूप से अपील तारीख 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई । 30 दिन की अवधि तारीख

6 फरवरी, 2017 को समाप्त हो चुकी थी । इसलिए, तारीख 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई अपील परिसीमा की अवधि के परे है । यदि हम अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में व्यतीत हुए समय में छूट प्रदान करें तो भी इस तथ्य पर विचार करते हुए कि निर्णय की प्रति पर मुहर तारीख 9 जनवरी, 2017 को लगा दी गई थी और ऐसा कुछ भी नहीं है कि निर्णय की प्रति 10 जनवरी, 2017 को प्राप्त हुई थी, किन्तु, चूंकि अपील 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई है, यह स्पष्टतः परिसीमा अवधि के पश्चात् फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा परिसीमा की अवधि की संगणना करने के पश्चात् अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय को सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करना चाहिए कि इस मामले में परिसीमा की अवधि कब व्यतीत हुई । किसी विशेष अपील को फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ 30 दिन की अवधि उपबंधित की गई है । इस मामले में निर्णय तारीख 5 जनवरी, 2017 को पारित किया गया था । अपीलार्थियों ने निर्णय की प्रति के लिए अगले दिन अर्थात् 6 जनवरी, 2017 को आवेदन किया । निर्णय की प्रति तारीख 7 जनवरी, 2017 को तैयार हो गई थी । निर्णय की प्रति तारीख 10 जनवरी, 2017 को प्राप्त की गई । स्वीकृत रूप से अपील तारीख 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई । 30 दिन की अवधि तारीख 6 फरवरी, 2017 को समाप्त हो चुकी थी । इसलिए, तारीख 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई अपील परिसीमा की अवधि के परे है । यदि हम अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में व्यतीत हुए समय में छूट प्रदान करें तो भी इस तथ्य पर विचार करते हुए कि निर्णय की प्रति पर मुहर तारीख 9 जनवरी, 2017 को लगा दी गई थी और ऐसा कुछ भी नहीं है कि निर्णय की प्रति 10 जनवरी, 2017 को प्राप्त हुई थी, किन्तु, चूंकि अपील 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई है, यह स्पष्टतः परिसीमा अवधि के पश्चात् फाइल की गई है । इसलिए, यह प्रश्न उद्भूत होगा कि क्या सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 और परिसीमा अधिनियम की धारा 4 के सिद्धांतों के आधार पर अपील को समय के भीतर फाइल किया गया कहा जा सकता है अर्थात् इसको अगले कार्य दिवस पर फाइल किया गया था । यह स्मरण होना चाहिए कि न्यायालय शीतकालीन अवकाश, जो तारीख 14 जनवरी, 2017 को आरम्भ हुआ और न्यायालय तारीख 13 फरवरी, 2017 को पुनः खुला, के कारण बंद था । जब उच्च न्यायालय अवकाश के दौरान बंद होता है, तब भी वह कतिपय परिस्थितियों से संबंधित अत्यावश्यक प्रकृति के मामलों

को प्राप्त किए जाने और उन पर विचारार्थ खुला रहता है । उच्च न्यायालय नियम के अध्याय 5 के नियम 10 के अधीन दांडिक कार्य सामान्य गति से चलता रहता है । अवकाशकालीन न्यायाधीश फाइल होने वाले नए मामलों में मूल, अपीली, सिविल या रिट अधिकारिता के अन्तर्गत आने वाले मामलों, जिनको उनके विचार में तुरन्त सुना जाना आवश्यक है, को भी सुनते हैं । वास्तव में, अपीलार्थियों के मामले को अपीली अधिकारिता के अन्तर्गत आने वाला नया मामला माना जा सकता है । वास्तव में, अपीलार्थियों को यह अधिकार था कि वे अत्यावश्यकता के आधार पर अवकाशकालीन न्यायपीठ की शरण में आते और न्यायपीठ को यह अधिकार था कि वह मामले पर उस दृष्टिकोण से विचार करता, जैसा कि उचित समझता । ऐसा नहीं है कि अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय की अवकाशकालीन अधिकारिता का अवलंब लिया हो । अपीलार्थियों के अनुसार वे चाहते थे कि मामला सुनवाई के लिए न्यायालय के समक्ष उस तारीख को उपस्थित हो जिस दिन न्यायालय अवकाश के पश्चात् नियमित रूप से बैठे अर्थात् तारीख 13 फरवरी, 2017 को । इसलिए, वे दो प्रश्न, जिन पर न्यायालय को अब विचार करना है, ये हैं कि न्यायालय अवकाश के लिए कब बंद हुए थे और कब यह माना जा सकता है कि न्यायालय खुल गए थे । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, नियम का अनुसरण करते हुए यह स्पष्ट है कि न्यायालय अत्यावश्यक प्रकृति के मामलों पर विचारण के सिवाय व्यवहारिक रूप से समस्त प्रयोजनार्थ और निश्चित रूप से दांडिक मामलों पर विचारणार्थ भी बंद थे । न्यायालय को इस सिद्धांत की जानकारी है कि इस तथ्य के होते हुए भी कि यह संभव है कि न्यायाधीश वास्तव में कार्य निष्पादन के लिए न बैठे और कार्य न करें, फिर भी यदि कार्यालय मामलों से संबंधित कागजातों की प्राप्ति के प्रयोजनार्थ खुला हुआ है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि न्यायालय बंद है । इस मामले में कार्यालय तारीख 7 फरवरी, 2017 तक खुला था जिस तारीख पर अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ समय सीमा की अवधि व्यतीत हुई और तत्पश्चात् तारीख 10 फरवरी, 2017 को अपील का इस आधार पर फाइल किया जाना कि उस दिवस पर कार्यालय खुला हुआ था और अपीलार्थियों की इच्छा थी कि उनके मामले पर तारीख 13 फरवरी, 2017 को विचार हो, परिसीमा अधिनियम की धारा 4 में अनुध्यात छूट प्रदान नहीं की जा सकती । यही कारण है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 4 परिसीमा की अवधि को विस्तारित नहीं करती । यह किसी विशिष्ट दिवस

पर किसी कार्य को किए जाने के प्रयोजनार्थ मात्र एक छूट है । यह नियम कठोर प्रतीत होता है किन्तु इन मामलों में विधि द्वारा बताई गई प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए । कार्यालय टिप्पण के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रजिस्ट्री तारीख 7, 8 और 9 फरवरी, 2017 को खुली थी और उसका नियमित फाइलिंग समय पूर्वाह्न 10.00 बजे से अपराह्न 1.30 बजे तक था । आगे यह प्रकटीकरण किया गया कि इन तारीखों पर कार्यालय मात्र अत्यावश्यक मामले फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ खुला रहा था; किन्तु कार्यालय ने आगे सूचित किया कि मामूली मामले भी सुने गए थे यद्यपि उनको तब तक सूचीबद्ध नहीं किया गया था जब तक कि उनके समर्थन में अत्यावश्यकता से संबंधित आवेदन फाइल नहीं किया गया था । यहां पर यह उल्लेख किया जाता है कि अवकाश के लिए जारी की गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट रूप से अभिकथित किया गया था कि न्यायालय तारीख 14 जनवरी, 2017 से तारीख 12 फरवरी, 2017 तक बन्द रहेगा । न्यायालय ने सुसंगत नियम का उल्लेख पहले ही कर दिया है । इस नियम में इस बात को पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि दांडिक मामलों पर विचारण अवकाश के दौरान भी जारी रहेगा । आगे, कतिपय मामले अर्थात् मूल, अपीली, पुनरीक्षण, सिविल या रिट अधिकारिता से संबंधित नए मामले, जो उनके विचार में तुरन्त सुने जाने योग्य थे, का भी उल्लेख किया गया है । कार्यालय भी उक्त प्रयोजन के लिए अर्थात् कार्यालय में मामले प्राप्त किए जाने, ताकि सम्पूर्ण प्रक्रियाओं के पालन और अत्यावश्यक आवेदन को अवेक्षित किए जाने के पश्चात् उसको न्यायालय द्वारा न्यायिक विचारण के लिए न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध कर दिया जाएगा, खुला रहा था । इसलिए, इस भाव में, यह कहा जाएगा कि न्यायालय तारीख 13 फरवरी, 2017 को पुनः खुला था । यदि न्यायालय तारीख 13 फरवरी, 2017 को ही पुनः खुला था, चूंकि परिसीमा की अवधि अवकाश की अवधि के दौरान व्यतीत हो चुकी है और धारा 4 का अवलंब लिए जाने पर केवल एक छूट प्राप्त होती है जिसको विधि द्वारा किसी कार्य को किसी विशिष्ट दिवस पर किए जाने के लिए विस्तारित किया गया है, तारीख 10 फरवरी, 2017 को अपील फाइल किए जाने से अपीलार्थी को परिसीमा अधिनियम की धारा 4 या सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 के लाभ प्राप्त करने का हक प्राप्त नहीं होगा । यहां पर यह उल्लेखनीय है कि कार्यालय टिप्पण के अनुसार भी अपील एक मामूली फाइलिंग के रूप में फाइल की जा सकती थी और इसको तारीख 7, 8 और 9 फरवरी,

2017 को भी प्राप्त किया जा सकता था । यदि ऐसा है, यद्यपि इन तारीखों पर न्यायालय बंद थे, तो भी यह कहा सकता है कि उक्त तारीखों पर कार्यालय खुला था । यह सत्य है कि न्यायालय ने कोई अपेक्षा नहीं की और रजिस्ट्री से इस बाबत कोई टिप्पण भी प्राप्त नहीं हुआ कि क्या कार्यालय तारीख 6 फरवरी, 2017 को खुला था । तारीख 6 फरवरी, 2017 को सोमवार था और कोई अवकाश नहीं था हम समझते है कि न्यायालय सुरक्षित रूप से यह धारणा कर सकता है कि तारीख 7 फरवरी, 2017, 8 फरवरी, 2017 और 9 फरवरी, 2017 को कार्यालय सामान्य फाइलिंग के प्रयोजन के लिए भी खुला था, कार्यालय टिप्पण के अनुसार कार्यालय तारीख 6 फरवरी, 2017 को भी खुला था । कार्यालय तारीख 6 फरवरी, 2017 को भी नहीं खुला था, तो भी तारीख 7 फरवरी, 2017, 8 फरवरी, 2017 और 9 फरवरी, 2017 को निश्चित रूप से खुला था । इसलिए, हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते कि तारीख 10 फरवरी, 2017 को अपील का फाइल किया जाना पर्याप्त था । यह सत्य है कि कार्यालय का मूल टिप्पण यह था कि अपील परिसीमा द्वारा बाधित है चूंकि परिसीमा अधिनियम की धारा 4 या सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 या परिसीमा अधिनियम की धारा 10 का लाभ भी केवल तभी दिया जा सकता था यदि अपील तारीख 13 फरवरी, 2017 को फाइल कर दी गई होती । यदि न्यायालय तारीख 13 फरवरी, 2017 को ही पुनः खुले थे और कार्यालय मामूली मामलों को प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ बंद था, तो भी शीतकालीन अवकाश के बाद न्यायालयों के पुनः खुलने पर निश्चित रूप से अपीलार्थी अपील तारीख 13 फरवरी, 2017 को फाइल कर सकता था । यदि कार्यालय अवकाश के दौरान मामूली मामलों को प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ खुला था, तो भी अपीलार्थी सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 या परिसीमा अधिनियम की धारा 4 द्वारा अन्तर्निहित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए यह दावा नहीं कर सकता कि अपील पैरा सं. 20 और 21 में वर्णित कारणों के आधार पर परिसीमा के भीतर फाइल की गई है । (पैरा 14, 15, 16, 19, 20, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1994] (1994) 1 एस. सी. सी. (सप्लीमेंटरी) 449 :
सिम्हाद्री सत्य नारायण राव बनाम **एम. बुद्ध प्रसाद** ; 8

[1948] ए. आई. आर. 1948 मद्रास 521 :
ठोकुदुबीव्यानू इमैनियूलू और अन्य ; 13

[1935] ए. आई. आर. 1935 प्रिवी कौंसिल 85 :
मकबूल अहमद और अन्य बनाम **ओंकार प्रताप नारायण सिंह और अन्य ;** 6

[1882] (1882) आई. एल. आर. 5 मद्रास 189 :
नचियप्पा मुदाली और अन्य बनाम **अय्यासामी अय्यर ।** 12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की विशेष अपील संख्या 34.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अंतर्गत अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री भागवत मेहरा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री हरी ओम भाटिया, ब्रीफ धारक

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ ने दिया ।

मु. न्या. जोसेफ – इस उच्च न्यायालय के कार्यालय ने इस विशेष अपील में अवेक्षित किया कि इस मामले को फाइल किए जाने में तीन दिनों का विलम्ब है । चूंकि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस बात पर विवाद किया था कि मामले को फाइल किए जाने में विलम्ब है, इस न्यायालय ने तारीख 3 मार्च, 2017 के आदेश द्वारा निदेशित किया कि कार्यालय पुनः सूचित करेगा कि तीन दिनों के विलम्ब की संगणना कैसे की गई । तत्पश्चात्, निम्नलिखित कार्यालय टिप्पण हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है :–

"तारीख 7 मार्च, 2017

माननीय न्यायालय

इस न्यायालय की रजिस्ट्री में यह विशेष अपील तारीख 10 फरवरी, 2017 अर्थात् शीतकालीन अवकाश के अंतिम दिवस को फाइल की गई है । समय सीमा की विहित अवधि नकल तैयार किए जाने में व्यतीत हुए दो दिनों को अपवर्जित किए जाने के पश्चात् भी तारीख 6 फरवरी, 2017 को व्यतीत हो चुकी है । अतः, जब वर्तमान अपील फाइल की गई, तो वह तीन दिनों की समय सीमा द्वारा बाधित थी ।

1887 के सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10(1) के अनुसार 'समय की संगणना' के संबंध में यह उल्लेख किया गया है कि –

> 'जहां कि इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् बनाए गए किसी केन्द्रीय अधिनियम या विनियम द्वारा किसी भी कार्य या कार्यवाही का किसी भी न्यायालय या कार्यालय में किसी निश्चित दिन को या किसी विहित कालावधि के अन्दर किया जाना निर्दिष्ट या अनुज्ञात है, वहां यदि वह न्यायालय या कार्यालय उस दिन या उस विहित कालावधि के अन्तिम दिन बन्द है तो वह कार्य या कार्यवाही, उस निकट आगामी दिन को जब वह न्यायालय या कार्यालय खुला है, की जाती है तो वह सम्यक् समय में की गई मानी जाएगी ।'

इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल अवकाश की अवधि का लाभ लेना चाहते हैं, यद्यपि न्यायालय या कार्यालय तारीख 10 फरवरी, 2017 को बन्द नहीं थे । यदि अपीलार्थी ने अपनी अपील तारीख 13 फरवरी, 2017 को फाइल की होती, अर्थात् अवकाश के पश्चात् न्यायालय के पुनः खुलने की तारीख पर, तो केवल तभी वह अवकाश की अवधि के अपवर्जन का लाभ ले सकता था । किन्तु अवकाश के दिनों का लाभ भूतलक्षी प्रभाव से अवकाश की आखिरी तारीख से अर्थात् तारीख 10 फरवरी, 2017 से, जब उसकी अपील फाइल की गई, नहीं दिया जा सकता ।

प्रस्तुत ।"

2. तत्पश्चात्, हमने अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री भागवत मेहरा और राज्य की ओर से ब्रीफ धारक श्री हरि मोहन भाटिया को सुना ।

3. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के अनुसार अपील फाइल किए जाने में कोई विलम्ब कारित नहीं हुआ है । उन्होंने इसके निम्नलिखित कारण बताए :–

> "आक्षेपित निर्णय तारीख 5 जनवरी, 2017 को पारित किया गया था । निर्णय की प्रति के लिए आवेदन तारीख 6 जनवरी, 2017 को प्रस्तुत किया गया था । सूचना पट्ट (नोटिस बोर्ड) पर सूचना लगाए जाने की तारीख 7 जनवरी, 2017 है । निर्णय की प्रति तारीख 10 जनवरी, 2017 को प्रदान कर दी गई थी । हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि यह प्रति संबद्ध अधिकारी की उपस्थिति में तारीख 9

जनवरी, 2017 को तैयार हो गई थी । अपील तारीख 10 फरवरी, 2017 को फाइल कर दी गई थी । अब हमारे समक्ष दो उपबंध हैं, जिनको हमें अवश्य ही निर्दिष्ट करना चाहिए । पहला उपबंध 1887 के सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 है, जो इस प्रकार है –

> 10. **समय की संगणना** – (1) जहां कि इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् बनाए गए किसी केन्द्रीय अधिनियम या विनियम द्वारा किसी भी कार्य या कार्यवाही का किसी भी न्यायालय या कार्यालय में किसी निश्चित दिन को या किसी विहित कालावधि के अन्दर किया जाना निर्दिष्ट या अनुज्ञात है वहां यदि वह न्यायालय या कार्यालय उस दिन या उस विहित कालावधि के अन्तिम दिन बन्द है तो वह कार्य या कार्यवाही, उस निकट आगामी दिन को जब वह न्यायालय या कार्यालय खुला है, की जाती है तो वह सम्यक् समय में की गई मानी जाएगी :
>
> परन्तु इस धारा की कोई भी बात ऐसे कार्य या कार्यवाही को लागू न होगी जिसे इंडियन लिमिटेशन ऐक्ट, 1877 (1877 का 15) लागू है ।
>
> (2) यह धारा 1877 की जनवरी के चौदहवें दिन को या उसके पश्चात् बनाए गए सब केन्द्रीय अधिनियमों और विनियमों को लागू होती है ।"

4. हम भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 4 का भी उल्लेख करेंगे, जो इस प्रकार है :–

> "4. **विहित काल का अवसान जब न्यायालय बन्द हो** – जहां कि किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए विहित काल का अवसान किसी ऐसे दिन होता हो जिस दिन न्यायालय बंद हो, वहां उस दिन वाद संस्थित किया जा सकेगा, अपील की जा सकेगी या आवेदन किया जा सकेगा जिस दिन न्यायालय फिर खुले ।
>
> **स्पष्टीकरण** – न्यायालय इस धारा के अर्थ के भीतर उस दिन बन्द समझा जाएगा जिस दिन वह अपने काम के नियमित काल के किसी भी भाग में बन्द रहे ।"

5. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के अनुसार न्यायालय तारीख 14

जनवरी, 2017 से शीत ऋतु अवकाश के कारण बन्द थे और तारीख 13 फरवरी, 2017 को पुनः खुल गए थे । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के अनुसार अपील समय के भीतर फाइल की गई थी चूंकि उसने अपील तारीख 10 फरवरी, 2017 को फाइल की थी ताकि अपील तारीख 13 फरवरी, 2017 को विचारणार्थ प्रस्तुत हो सके । उन्होंने दलील दी कि तारीख 11 फरवरी, 2017 को द्वितीय शनिवार होने के कारण अवकाश था । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, निर्णय तारीख 5 जनवरी, 2017 को पारित किया गया था । परिसीमा अधिनियम की धारा 4 और सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10, दोनों इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि यदि किसी पक्ष को किसी कार्य को न्यायालय के किसी आदेश द्वारा करने से प्रवारित किया जाता है, तो वह पक्ष उस कार्य को प्रथम पश्चात्वर्ती अवसर पर कर सकता है । अतः, यदि किसी कार्य के निर्वहन की अवधि किसी ऐसी तारीख को, जिस पर अवकाश है, व्यतीत हो जाती है, तो अगली तारीख, जिस पर न्यायालय या कार्यालय पुनः खुलेंगे, पर उस कार्य का किया जाना पर्याप्त होगा । इस सामान्य सिद्धांत के पीछे तर्कणा यह है कि विधि किसी असंभव कार्य के निर्वहन के लिए किसी को बाध्य नहीं करती ।

6. परिसीमा अधिनियम की धारा 4 परिसीमा की अवधि को विस्तारित नहीं करती । इस संबंध में **मकबूल अहमद और अन्य** बनाम **ओंकार प्रताप नारायण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में जो अभिनिर्धारित किया गया है, इस प्रकार है :–

> "यह उल्लेख किया जाता है कि धारा 4 और धारा 14 के स्वरूप के मध्य सुस्पष्ट अंतर है । धारा 4 में प्रयुक्त भाषा उपदर्शित करती है कि इसका विहित अवधि की संगणना से कोई संबंध नहीं है । यह धारा उपबंधित करती है कि जहां विहित अवधि किसी दिवस को व्यतीत हो जाती है, तो इस तथ्य के होते हुए भी कि आवेदन उस दिवस को किया जा सकता है जब न्यायालय पुनः खुलता है, इस धारा में ऐसा कुछ भी नहीं है जो विहित अवधि की दीर्घता में किसी प्रकार का परिवर्तन करता हो, जबकि अधिनियम की धारा 14 में और समान प्रकृति की अन्य धाराओं में निर्देश इन शब्दों के साथ आरम्भ होता है : 'किसी आवेदन के लिए विहित समय सीमा की

[1] ए. आई. आर. 1935 प्रिवी कौंसिल 85.

अवधि की संगणना करते हुए,' कतिपय अवधि को अपवर्जन किया जाना होगा ।"

7. उच्च न्यायालय द्वारा बड़ी संख्या में पारित निर्णयों में इस निर्णय का अनुसरण किया गया है । इस उपबंध के परिणामस्वरूप एक रियायत प्रकाश में आती है, जो यह है कि जो कार्य न्यायालय के बंद होने के परिणामस्वरूप नहीं हो सका, वह कार्य न्यायालय के पुनः खुलने के दिवस पर निष्पादित किया जा सकता है । इस न्यायालय को विनियमित करने वाले इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम के अध्याय 5 का नियम 10 इस प्रकार है :–

> "10. **अवकाश के दौरान कर्तव्यपालन पर न्यायाधीश** – (1) अवकाश के दौरान उन न्यायाधीशों द्वारा दांडिक कार्य किया जाता रहेगा जिनको इस प्रयोजन के लिए मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त किया गया है । वे नए मामलों, जिनमें उनके विचार में तुरन्त सुनवाई अपेक्षित है, में न्यायालय में निहित मूल, अपीली, पुनरीक्षण, सिविल या रिट अधिकारिता का प्रयोग भी कर सकते हैं ।
>
> इस अधिकारिता का प्रयोग उन मामलों में भी किया जा सकता है जो नियमानुसार दो या दो से अधिक न्यायाधीशों द्वारा संज्ञेय होते हैं जब तक कि मामले की सुनवाई किसी अन्य विधि के अंतर्गत एक न्यायाधीश से अधिक न्यायाधीशों द्वारा अपेक्षित नहीं है ।"

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया ।)

8. वास्तव में, इस प्रश्न का उत्तर शीतकालीन अवकाश, जिसके दौरान अपील फाइल की गई, के लिए जारी अधिसूचना की समझ पर निर्भर करता है । यह अधिसूचना इस प्रकार है :–

उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल

आदेश संख्या 03 तारीख 11 जनवरी, 2017

> उत्तराखंड उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति 1952 के न्यायालय नियम, जो इस उच्च न्यायालय पर लागू होते हैं, के अध्याय 5 के नियम 10 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय के निम्नलिखित न्यायाधीशों को अवकाशकालीन न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करते हैं जो ऊपरवर्णित नियम के नियम 10 के उपनियम (1) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करेंगे –

माननीय न्यायाधीश का नाम	अवधि
1. माननीय न्यायमूर्ति वी. के. विष्ट	16-1-2017 से 22-1-2017
2. माननीय न्यायमूर्ति सर्वेश कुमार गुप्ता	23-1-2017 से 29-1-2017
3. माननीय न्यायमूर्ति यू. सी. ध्यानी	30-1-2017 से 5-2-2017
4. माननीय न्यायमूर्ति सुधांशु धुलिया	6-2-2017 से 12-2-2017

अवकाशकालीन न्यायाधीश शनिवार, रविवार और अन्य राजपत्रित अवकाशों को छोड़कर प्रत्येक दिन पूर्वाह्न 11 बजे से न्यायालय का संचालन करेंगे और अवमान मामलों को छोड़कर केवल अत्यावश्यक मामलों पर विचार करेंगे । लम्बित सिविल मामलों पर विचार नहीं किया जाएगा । तारीख 13 जनवरी, 2017 को फाइल किए गए नए मामले न्यायालय के पुनः खुलने पर अर्थात् तारीख 13 फरवरी, 2017 को सुने जाएंगे ।"

अतः यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि अधिसूचना के साथ पठित नियम 10 केवल अत्यावश्यक मामलों की सुनवाई के लिए अनुध्यात करता है । माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अन्तर्गत अनेक मामलों में इस प्रश्न पर विचार किया । **सिम्हाद्री सत्य नारायण राव** बनाम **एम. बुद्ध प्रसाद**[1] वाले मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय एक ऐसी परिस्थिति से उत्पन्न प्रश्न पर विचार कर रहा था जिसमें आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय संक्रांति के अवकाश के कारणवश 2 जनवरी से 12 जनवरी, 1990 (दोनों दिनों को सम्मिलित करते हुए) तक बंद था । निर्वाचन याचिका न्यायालय के पुनः खुलने वाले दिवस अर्थात् तारीख 15 जनवरी, 1990 को फाइल की गई थी । 13 और 14 जनवरी को द्वितीय शनिवार और रविवार होने के कारण अवकाश था । उच्च न्यायालय द्वारा जारी की गई अधिसूचना में अन्य बातों के साथ-साथ जो उपबंधित किया गया था, निम्नलिखित है :–

---

[1] (1994) 1 एस. सी. सी. (सप्लीमेंटरी) 449.

"एतद्द्वारा सूचना दी जाती है कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय वर्ष 1990 के संक्रांति अवकाश के कारण मंगलवार 2 जनवरी से शुक्रवार 12 जनवरी तक (दोनों दिनों को सम्मिलित करते हुए) बंद रहेगा ।"

9. उक्त निर्णय में आगे उपबंधित किया जाता है कि अवकाशकालीन न्यायाधीश अत्यावश्यक प्रकृति के आवेदनों के निस्तारण के लिए कतिपय तारीखों पर बैठेंगे, जब तक कि अन्यथा रूप से अधिसूचित न कर दिया जाए । उक्त निर्णय का पैराग्राफ 9 निम्नलिखित है :–

"9. अधिसूचना के प्रथम पैरा, जो क्रियात्मक भाग है, में अभिकथित है कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय संक्रांति के अवकाश के कारण मंगलवार 2 जनवरी से शुक्रवार 12 जनवरी, 1990 तक (दोनों दिनों को सम्मिलित करते हुए) बंद रहेगा । अधिसूचना में यह कहीं भी अभिकथित नहीं है कि उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री खुली रहेगी । इस बाबत सूचना कि 'आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय बंद रहेगा' को सामान्यजन-मुकदमेबाजों द्वारा इस अर्थ में नहीं समझा जा सकता कि यह (आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय) फाइलिंग के प्रयोजनार्थ खुला रहेगा । क्रियान्वयन भाग, जो संक्रांति के अवकाश के लिए उच्च न्यायालय के बंद होने की घोषणा करता है, के पश्चात्वर्ती पैरा विनिर्दिष्ट रूप से उन मामलों को उपदर्शित करते हैं जिनको अवकाश के दौरान फाइल किया जा सकता है । इस भाग में यह अभिकथित है कि दो माननीय न्यायाधीश विनिर्दिष्ट अवधि के लिए अवकाशकालीन न्यायाधीश होंगे और वे अत्यावश्यक प्रकृति के आवेदनों का निस्तारण करेंगे । दो सहायक रजिस्ट्रारों को अवकाशकालीन अधिकारियों के रूप में पदनामित किया जाना और अवकाशकालीन अधिकारियों को अत्यावश्यक आवेदनों की सुनवाई के प्रयोजनार्थ अवकाशकालीन न्यायाधीशों के बैठने की सूचना एक दिन पहले दिए जाने का उपबंध दर्शित करता है कि रजिस्ट्री सामान्य अनुक्रम में कार्य नहीं कर रही थी । अधिसूचना को स्पष्ट रूप से पढ़े जाने पर इस बाबत कोई संदेह शेष नहीं रह जाता कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय सभी प्रयोजनार्थ बंद रहा सिवाय अत्यावश्यक प्रकृति के आवेदनों की सुनवाई के जिसके लिए अवकाशकालीन न्यायाधीश और अवकाशकालीन अधिकारियों को पदनामित किया गया था । अधिसूचना में निर्वाचन याचिका के फाइल किए जाने के लिए कोई

उपबंध नहीं था और इस प्रकार सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 का अवलंब लेते हुए उच्च न्यायालय के पुनः खुलने के दिवस पर प्रत्यर्थियों द्वारा निर्वाचन याचिका का फाइल किया जाना न्यायसंगत था ।"

10. उच्च न्यायालय की तर्कणा निर्णय के पैराग्राफ 12 में समाविष्ट है, जो इस प्रकार है :–

"आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, जिसने संक्रांति अवकाश की अधिसूचना जारी की थी, ने उसका निर्वचन निम्नलिखित शब्दों में किया :–

अतः, इसका अर्थ यह है कि तारीख 29 दिसम्बर, 1989 की ऊपरनिर्दिष्ट अधिसूचना माननीय न्यायाधीशों को या रजिस्ट्री को संक्रांति अवकाश के दौरान निर्वाचन याचिका प्राप्त करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं करती । जैसा कि उल्लेख पहले ही किया जा चुका है, अधिसूचना अधिकथित करती है कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय तारीख 2 जनवरी से 12 जनवरी, 1990 (दोनों दिनों को सम्मिलित करते हुए) तक संक्रांति अवकाश के कारणवश बंद रहेगा । अधिसूचना में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ही तारीख 2 जनवरी से 12 जनवरी, 1990 तक कार्य से विरत रहेंगे और रजिस्ट्री अवकाश की उक्त अवधि के दौरान सामान्य रूप से कार्य करती रहेगी । अधिसूचना में इस बात को स्पष्ट नहीं किया गया है कि केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 2 जनवरी, 1990 से 12 जनवरी, 1990 के मध्य कार्य से विरत रहेंगे और अवकाश की उक्त अवधि के दौरान रजिस्ट्री सामान्य रूप से कार्य करती रहेगी । अधिसूचना में इस बात को भी विनिर्दिष्ट रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है कि अवकाशकालीन अधिकारी उनके समक्ष प्रस्तुत किए गए किसी कागज को, सिवाय अत्यावश्यक प्रकृति के आवेदनों के नोटिसों के, प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत हैं । मैं अधिसूचना में समाविष्ट विनिर्दिष्ट शब्दावली के प्रकाश में अभिनिर्धारित करता हूं कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय तारीख 2 जनवरी, 1990 से 12 जनवरी, 1990 तक संक्रांति अवकाश के कारणवश बंद रहा जिसका अर्थ है कि उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री भी उक्त अवधि के दौरान बंद रही ।

याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री अवकाश के दौरान खुली हुई थी और वहां पर लगभग 25 निर्वाचन याचिकाएं प्राप्त की गई थीं । यह आवश्यक नहीं है कि इन आवेदनों में इस बात पर विचार किया जाए कि क्या रजिस्ट्री अवकाश के दौरान उन 25 निर्वाचन याचिकाओं को प्राप्त करने के लिए सक्षम थी । यह इन आवेदनों के निस्तारण के लिए सुसंगत विचारणार्थ नहीं है । इन आवेदनों में जिस बात पर विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है, यह है कि क्या उच्च न्यायालय तारीख 29 दिसम्बर, 1989 की अधिसूचना में समाविष्ट शब्दावली के प्रकाश में तारीख 2 जनवरी, 1990 से 12 जनवरी, 1990 के मध्य बंद रहा जिससे कि निर्वाचन याचियों को सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 का अवलंब लेने के समर्थ बनाया जा सके ।

याचियों के विद्वान् काउंसेल ने सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 में समाविष्ट शब्दावली को निर्दिष्ट करते हुए, परिसीमा के अंतिम दिवस पर 'न्यायालय' और 'कार्यालय' के बन्दीकरण के मध्य अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया और यह निवेदन करने का प्रयास किया कि जो बंद था वह उच्च न्यायालय था, न कि कार्यालय । अतः, अधिसूचना से इस प्रकार का कोई निष्कर्ष निकाले जाने की कोई गुंजाइश नहीं है । जैसा कि मैंने पहले ही उल्लेख कर दिया है, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय बंद था और अधिसूचना में न्यायालय और कार्यालय, जिससे तात्पर्य उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री से है, के मध्य कोई अन्तर नहीं किया गया है ।"

11. इस तर्कणा को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भी मान्य ठहराया गया ।

12. **नचियप्पा मुदाली और अन्य** बनाम **अय्यासामी अय्यर**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 पर विचार किया, जो वर्तमान परिसीमा अधिनियम की धारा 4 के समानांतर है । हम उक्त निर्णय के पैरा 9 और 10 को निर्दिष्ट करते हैं, जो इस प्रकार है :-

"9. वह तारीख जिस पर अपील का समय व्यतीत हुआ, 1

---

[1] (1882) आई. एल. आर. 5 मद्रास 189.

जुलाई थी और इससे इनकार नहीं किया गया है कि अधिसूचना के मतावलम्बन में न्यायालयों के कार्यालय खुले थे और वादपत्रों और याचिकाओं को प्राप्त करने के लिए नियुक्त अधिकारी. सप्ताह में दो बार 1 जुलाई के पश्चात् और 22 जुलाई के पूर्व कार्यालय में उपस्थित हुए थे ।

10. अपीलार्थियों ने दलील दी कि याचिका 1877 के अधिनियम सं. 15 की धारा 5 के उपबंधों के सामंजस्य में समय के भीतर फाइल की गई थी । न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय अधिसूचना में विनिर्दिष्ट दिनों पर वादपत्र और याचिकाएं प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ खुले थे और अपील परिसीमा द्वारा बाधित थी । उन्होंने इस बात का विरोध किया कि धारा 5 में शब्द 'एक दिवस जिसपर न्यायालय बन्द है' और 'वह दिवस जिस पर न्यायालय पुनः खुलता है' किसी ऐसे दिन को निर्दिष्ट नहीं करते जो उस अवधि के दौरान पड़ता हो जब न्यायालयों की बैठक वार्षिक अवकाश के कारणवश स्थगित कर दी गई हो । वे शब्द जिनका अवलंब अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा लिया गया, का अर्थान्वयन धारा द्वारा अनुध्यात प्रयोजन के संदर्भ में किया जाना चाहिए । न्यायालय की न्यायिक बैठकें स्थगित की जा सकती हैं, किन्तु न्यायालय के कार्यालय फिर भी अभिवचनों के प्रस्तुतीरण के लिए खुले रह सकते हैं । न्यायालय इस प्रयोजन के लिए पुनः खुल सकते हैं यद्यपि न्यायाधीश न्यायिक कार्यों में संलग्न न हो या न्यायालय में उपस्थित न हो या उस स्थान पर उपस्थित न हो जहां न्यायालय आयोजित की जा रही हो । न्यायालय खुली हो सकती है यद्यपि न्यायाधीश का पद स्थायी रूप से रिक्त हो । इन आकस्मिकताओं का पहले ही अंदाजा लगा लिया गया था और इसीलिए 1869 में न्यायालय द्वारा जारी किए गए नियमों द्वारा उपबंध बना दिए गए थे (जहां तक ऐसा किया जाना आवश्यक था) और अभी भी प्रभावी हैं और इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार को ब्रिटिश भारत में और इंग्लैड में सामान्य रूढ़ियों द्वारा मंजूरी प्राप्त है इस दृष्टि से न्यायालय 1 जुलाई के पश्चात् प्रथम दिन पुनः खुले जिस दिन जिला न्यायालय के कार्यालय खुले थे और एक समुचित अधिकारी वादपत्रों और याचिकाओं को प्राप्त करने के लिए कार्यालय में उपस्थित हुआ । इस दलील के दौरान एक अन्य आक्षेप पर विचार किया गया कि अधिसूचना में अपीलों के संदर्भ में कोई

निर्देश नहीं है । यद्यपि शब्द 'याचिका' का प्रयोग दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 592 में अपील ग्रहण किए जाने के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन के संदर्भ में किया गया है, अब इसका प्रयोग सामान्यतया आवेदन को वर्णित किए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं किया जाता और यदि अपीलार्थी अधिसूचना के शब्दों द्वारा भ्रमित थे, तो यह परिस्थिति अपील के प्रस्तुतिकरण में हुए विलम्ब को क्षमा किए जाने का पर्याप्त कारण होगी । हम निम्नलिखित विवाद्यक का विचारण न्यायाधीश द्वारा किए जाने के लिए मामले को वापस भेजते हैं –

क्या अपील के प्रस्तुतिकरण में कारित विलम्ब अधिसूचना के शब्दों को अपीलार्थी द्वारा न समझे जाने के कारण कारित हुआ है ?"

13. **ठोकुदुबीव्यानू इक्यानियूलू और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या पुनर्विलोकन याचिका समय सीमा के भीतर फाइल की गई थी । इस मामले में निर्णय तारीख 24 जनवरी, 1947 को पारित किया गया था । परिसीमा की अवधि तारीख 22 जून, 1947 या उसके आस-पास व्यतीत हो गई थी । परिसीमा की अवधि तब व्यतीत हुई जब न्यायालय अवकाश पर था । न्यायालय तारीख 28 अप्रैल से 4 जुलाई (दोनों दिवसों को सम्मिलित करते हुए) तक बंद था । न्यायालय तारीख 5 जुलाई को पुनः खुला जो शनिवार था । उक्त तारीख पर कार्यालय खुला था और वादपत्र, अपीलें और याचिकाएं और अन्य कार्यवाहियां फाइल की गई थीं और उनको प्रस्तुत किया जा सकता था । किन्तु याचिका तारीख 7 जुलाई को प्रस्तुत की गई । यह दलील दी गई कि यद्यपि न्यायालय तारीख 5 जुलाई को खुला था, फिर भी न्यायालय वास्तव में उस दिन नहीं बैठे थे या कोई न्यायिक कार्य उस दिन नहीं हुआ था ; किसी भी न्यायाधीश ने उस दिन न्याय-निर्णयन का कार्य नहीं किया । याची की दलील कि याची के बारे में यह प्रतीत करते हुए कि 7 जुलाई को याचिका फाइल की गई जिस दिन न्यायालय पुनः खुला और इस प्रकार उसने परिसीमा अधिनियम की धारा 4 का लाभ लिया है, को अस्वीकृत कर दिया गया । इस मामले में, न्यायालय ने **नचियप्पा मुदाली** (उपरोक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट किया जिसको हमने सदैव निर्दिष्ट किया है । मुख्य न्यायमूर्ति ने जो अभिनिर्धारित किया वह निम्नलिखित है :–

---

[1] ए. आई. आर. 1948 मद्रास 521.

"4. उपस्थित मामले में, यह प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है कि क्या न्यायालय उस तारीख को खुला था जिस तारीख पर न्यायालय अवकाश पर था । किन्तु, प्रश्न यह उद्भूत हुआ है कि जब न्यायालय तारीख 5 जुलाई को खुला तो उस दिन वही तारीख थी जिस तारीख पर इस मामले में याचिका को प्रस्तुत किया जाना चाहिए था । मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि किसी सुदृढ़ मामले में उपरोक्त दोनों विनिश्चयों के प्रकाश में याचिका उस तारीख पर प्रस्तुत की जानी चाहिए थी जिस तारीख पर न्यायालय पुनः खुल गए थे । मैं अभिनिर्धारित करता हूं कि किसी सुदृढ़ मामले में और साथ ही उद्धृत किए गए दोनों विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, याचिका, जिसको न्यायालय के बंद रहने के दौरान प्रस्तुत नहीं किया गया था किन्तु एक दिन पश्चात् कार्यालय में फाइल किया गया था जब कार्यालय न्यायालय अवकाश के दौरान इसी प्रयोजन के लिए खुला, परिसीमा द्वारा बाधित थी । दलील के दौरान याची के काउंसेल ने दो विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया । दोनों विनिश्चय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए हैं । मैं इससे अधिक कुछ भी कहना आवश्यक नहीं समझता कि मैं इन विनिश्चयों से सहमत नहीं हूं जो पूर्ववर्ती विनिश्चयों, जिनको पहले निर्दिष्ट किया गया, के विरोध में हैं और उनको ऐसी कोटि के उद्घोषित विनिश्चय नहीं माना जा सकता जिनका अनुसरण उस तारीख के संबंध में किया जा सकता हो जब कोई अपील, याचिका या अन्य कार्यवाही न्यायालय के अवकाश की समाप्ति या उसके दौरान संस्थित की गई ।"

14. न तो परिसीमा अधिनियम की धारा 4 और न ही सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 समय सीमा की अवधि को विस्तारित किए जाने के प्रयोजनार्थ संबद्ध है और ये धाराएं मात्र किसी विशेष कार्य को करने के लिए छूट प्रदान करती हैं । हमको सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करना चाहिए कि इस मामले में परिसीमा की अवधि कब व्यतीत हुई । किसी विशेष अपील को फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ 30 दिन की अवधि उपबंधित की गई है । इस मामले में निर्णय तारीख 5 जनवरी, 2017 को पारित किया गया था । अपीलार्थियों ने निर्णय की प्रति के लिए अगले दिन अर्थात् 6 जनवरी, 2017 को आवेदन किया । निर्णय की प्रति तारीख 7 जनवरी, 2017 को तैयार हो गई थी । निर्णय की प्रति तारीख 10 जनवरी, 2017 को प्राप्त की गई । स्वीकृत रूप से अपील तारीख 10 फरवरी, 2017 को

फाइल की गई । 30 दिन की अवधि तारीख 6 फरवरी, 2017 को समाप्त हो चुकी थी । इसलिए, तारीख 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई अपील परिसीमा की अवधि के परे है । यदि हम अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में व्यतीत हुए समय में छूट प्रदान करें तो भी इस तथ्य पर विचार करते हुए कि निर्णय की प्रति पर मुहर तारीख 9 जनवरी, 2017 को लगा दी गई थी और ऐसा कुछ भी नहीं है कि निर्णय की प्रति 10 जनवरी, 2017 को प्राप्त हुई थी, किन्तु, चूंकि अपील 10 फरवरी, 2017 को फाइल की गई है, यह स्पष्टतः परिसीमा अवधि के पश्चात् फाइल की गई है । इसलिए, यह प्रश्न उद्भूत होगा कि क्या सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 और परिसीमा अधिनियम की धारा 4 के सिद्धांतों के आधार पर अपील को समय के भीतर फाइल किया गया कहा जा सकता है अर्थात् इसको अगले कार्य दिवस पर फाइल किया गया था । यह स्मरण होना चाहिए कि न्यायालय शीतकालीन अवकाश, जो तारीख 14 जनवरी, 2017 को आरम्भ हुआ और न्यायालय तारीख 13 फरवरी, 2017 को पुनः खुला, के कारण बंद था ।

15. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री भागवत मेहरा ने दलील दी कि कार्यालय फाइलिंग के प्रयोजनार्थ तारीख 10 फरवरी, 2017 तक खुले थे और अपीलार्थी चाहते थे कि उनकी अपील की सुनवाई उसी दिन हो जाए जिस दिन न्यायालय अवकाश के पश्चात् वास्तव में खुलने वाले थे । हमने उच्च न्यायालय नियम के अध्याय 5 के नियम 10 के उद्देश्य का उल्लेख किया है । जब उच्च न्यायालय अवकाश के दौरान बंद होता है, तब भी वह कतिपय परिस्थितियों से संबंधित अत्यावश्यक प्रकृति के मामलों को प्राप्त किए जाने और उन पर विचारार्थ खुला रहता है । उच्च न्यायालय नियम के अध्याय 5 के नियम 10 के अधीन दांडिक कार्य सामान्य गति से चलता रहता है । अवकाशकालीन न्यायाधीश फाइल होने वाले नए मामलों में मूल, अपीली, सिविल या रिट अधिकारिता के अन्तर्गत आने वाले मामलों, जिनको उनके विचार में तुरन्त सुना जाना आवश्यक है, को भी सुनते हैं । वास्तव में, अपीलार्थियों के मामले को अपीली अधिकारिता के अन्तर्गत आने वाला नया मामला माना जा सकता है । वास्तव में, अपीलार्थियों को यह अधिकार था कि वे अत्यावश्यकता के आधार पर अवकाशकालीन न्यायपीठ की शरण में आते और न्यायपीठ को यह अधिकार था कि वह मामले पर उस दृष्टिकोण से विचार करता, जैसा कि उचित समझता । ऐसा नहीं है कि अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय की अवकाशकालीन अधिकारिता का

अवलंब लिया हो । अपीलार्थियों के अनुसार वे चाहते थे कि मामला सुनवाई के लिए न्यायालय के समक्ष उस तारीख को उपस्थित हो जिस दिन न्यायालय अवकाश के पश्चात् नियमित रूप से बैठे अर्थात् तारीख 13 फरवरी, 2017 को । इसलिए, वे दो प्रश्न, जिन पर हमें अब विचार करना है, ये हैं कि न्यायालय अवकाश के लिए कब बंद हुए थे और कब यह माना जा सकता है कि न्यायालय खुल गए थे । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, नियम का अनुसरण करते हुए यह स्पष्ट है कि न्यायालय अत्यावश्यक प्रकृति के मामलों पर विचारण के सिवाय व्यवहारिक रूप से समस्त प्रयोजनार्थ और निश्चित रूप से दांडिक मामलों पर विचारणार्थ भी बंद थे । हमें इस सिद्धांत की जानकारी है कि इस तथ्य के होते हुए भी कि यह संभव है कि न्यायाधीश वास्तव में कार्य निष्पादन के लिए न बैठें और कार्य न करें, फिर भी यदि कार्यालय मामलों से संबंधित कागजातों की प्राप्ति के प्रयोजनार्थ खुला हुआ है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि न्यायालय बंद है ।

16. उदाहरण के लिए, यदि इस मामले में कार्यालय तारीख 7 फरवरी, 2017 तक खुला था जिस तारीख पर अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ समय सीमा की अवधि व्यतीत हुई और तत्पश्चात् तारीख 10 फरवरी, 2017 को अपील का इस आधार पर फाइल किया जाना कि उस दिवस पर कार्यालय खुला हुआ था और अपीलार्थियों की इच्छा थी कि उनके मामले पर तारीख 13 फरवरी, 2017 को विचार हो, परिसीमा अधिनियम की धारा 4 में अनुध्यात छूट प्रदान नहीं की जा सकती । यही कारण है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 4 परिसीमा की अवधि को विस्तारित नहीं करती । यह किसी विशिष्ट दिवस पर किसी कार्य को किए जाने के प्रयोजनार्थ मात्र एक छूट है । यह नियम कठोर प्रतीत होता है किन्तु इन मामलों में विधि द्वारा बताई गई प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए ।

17. हमने तारीख 19 जुलाई, 2017 का आदेश पारित किया जिसके द्वारा हमने कार्यालय से निम्नलिखित के बाबत रिपोर्ट प्रस्तुत करने की अपेक्षा की थी :–

(i) क्या कार्यालय तारीख 7, 8 और 9 फरवरी, 2017 को खुला था ?

(ii) क्या यह मात्र आवश्यक मामले प्राप्त किए जाने के

प्रयोजनार्थ खुला था या मामूली मामले जो अत्यावश्यक प्रकृति के नहीं थे, भी इन तारीखों पर प्राप्त किए गए थे ?

18. रजिस्ट्री ने तारीख 22 जून, 2017 को निम्नलिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की :–

> "माननीय न्यायालय द्वारा तारीख 19 जून, 2017 को पारित आदेश के अनुपालन में सादर निवेदन किया जाता है कि –
>
> (i) न्यायालय की रजिस्ट्री तारीख 7, 8 और 9 फरवरी, 2017 को पूरे दिन खुली थी और पूर्वाह्न 10.00 बजे से अपराह्न 1.30 तक नियमित रूप से फाइलिंग की गई ;
>
> (ii) इसके अतिरिक्त, इन तारीखों पर कार्यालय केवल अत्यावश्यक मामले फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ खुला रहा । फिर भी, अवकाश के दौरान रजिस्ट्री में सामान्य मामले भी फाइल किए गए, किन्तु उनको माननीय न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए सूचीबद्ध नहीं किया गया जब तक कि उनके साथ अत्यावश्यकता से संबंधित आवेदन फाइल नहीं किया गया ।"

19. कार्यालय टिप्पण के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रजिस्ट्री तारीख 7, 8 और 9 फरवरी, 2017 को खुली थी और उसका नियमित फाइलिंग समय पूर्वाह्न 10.00 बजे से अपराह्न 1.30 बजे तक था । आगे यह प्रकटीकरण किया गया कि इन तारीखों पर कार्यालय मात्र अत्यावश्यक मामले फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ खुला रहा था ; किन्तु कार्यालय ने आगे सूचित किया कि मामूली मामले भी सुने गए थे यद्यपि उनको तब तक सूचीबद्ध नहीं किया गया था जब तक कि उनके समर्थन में अत्यावश्यकता से संबंधित आवेदन फाइल नहीं किया गया था । यहां पर यह उल्लेख किया जाता है कि अवकाश के लिए जारी की गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट रूप से अभिकथित किया गया था कि न्यायालय तारीख 14 जनवरी, 2017 से तारीख 12 फरवरी, 2017 तक बंद रहेगा । हमने सुसंगत नियम का उल्लेख पहले ही कर दिया है । इस नियम में इस बात को पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि दांडिक मामलों पर विचारण अवकाश के दौरान भी जारी रहेगा । आगे, कतिपय मामले अर्थात् मूल, अपीली, पुनरीक्षण, सिविल या रिट अधिकारिता से संबंधित नए मामले, जो उनके विचार में तुरन्त सुने जाने योग्य थे, का भी उल्लेख किया गया है ।

कार्यालय भी उक्त प्रयोजन के लिए अर्थात् कार्यालय में मामले प्राप्त किए जाने, ताकि सम्पूर्ण प्रक्रियाओं के पालन और अत्यावश्यक आवेदन को अवेक्षित किए जाने के पश्चात् उसको न्यायालय द्वारा न्यायिक विचारण के लिए न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध कर दिया जाएगा, खुला रहा था ।

20. इसलिए, इस भाव में, यह कहा जाएगा कि न्यायालय तारीख 13 फरवरी, 2017 को पुनः खुला था । यदि न्यायालय तारीख 13 फरवरी, 2017 को ही पुनः खुला था, चूंकि परिसीमा की अवधि अवकाश की अवधि के दौरान व्यतीत हो चुकी है और धारा 4 का अवलंब लिए जाने पर केवल एक छूट प्राप्त होती है जिसको विधि द्वारा किसी कार्य को किसी विशिष्ट दिवस पर किए जाने के लिए विस्तारित किया गया है, तारीख 10 फरवरी, 2017 को अपील फाइल किए जाने से अपीलार्थी को परिसीमा अधिनियम की धारा 4 या सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 के लाभ प्राप्त करने का हक प्राप्त नहीं होगा । यहां पर यह उल्लेखनीय है कि कार्यालय टिप्पण के अनुसार भी अपील एक मामूली फाइलिंग के रूप में फाइल की जा सकती थी और इसको तारीख 7, 8 और 9 फरवरी, 2017 को भी प्राप्त किया जा सकता था । यदि ऐसा है, यद्यपि इन तारीखों पर न्यायालय बंद थे, तो भी यह कहा सकता है कि उक्त तारीखों पर कार्यालय खुला था ।

21. यह सत्य है कि न्यायालय ने कोई अपेक्षा नहीं की और रजिस्ट्री से इस बाबत कोई टिप्पण भी प्राप्त नहीं हुआ कि क्या कार्यालय तारीख 6 फरवरी, 2017 को खुला था । तारीख 6 फरवरी, 2017 को सोमवार था और कोई अवकाश नहीं था हम समझते हैं कि हम सुरक्षित रूप से यह धारणा कर सकते हैं कि तारीख 7 फरवरी, 2017, 8 फरवरी, 2017 और 9 फरवरी, 2017 को कार्यालय सामान्य फाइलिंग के प्रयोजन के लिए भी खुला था, कार्यालय टिप्पण के अनुसार कार्यालय तारीख 6 फरवरी, 2017 को भी खुला था । कार्यालय तारीख 6 फरवरी, 2017 को भी नहीं खुला था, तो भी तारीख 7 फरवरी, 2017, 8 फरवरी, 2017 और 9 फरवरी, 2017 को निश्चित रूप से खुला था । इसलिए, हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते कि तारीख 10 फरवरी, 2017 को अपील का फाइल किया जाना पर्याप्त था ।

22. यह सत्य है कि कार्यालय का मूल टिप्पण यह था कि अपील परिसीमा द्वारा बाधित है चूंकि परिसीमा अधिनियम की धारा 4 या सामान्य

खंड अधिनियम की धारा 10 या परिसीमा अधिनियम की धारा 10 का लाभ भी केवल तभी दिया जा सकता था यदि अपील तारीख 13 फरवरी, 2017 को फाइल कर दी गई होती । यदि न्यायालय तारीख 13 फरवरी, 2017 को ही पुनः खुले थे और कार्यालय मामूली मामलों को प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ बंद था, तो भी शीतकालीन अवकाश के बाद न्यायालयों के पुनः खुलने पर निश्चित रूप से अपीलार्थी तारीख 13 फरवरी, 2017 को अपील फाइल कर सकता था । यदि कार्यालय अवकाश के दौरान मामूली मामलों को प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ खुला था, तो भी अपीलार्थी सामान्य खंड अधिनियम की धारा 10 या परिसीमा अधिनियम की धारा 4 द्वारा अन्तर्निहित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए यह दावा नहीं कर सकता कि अपील पैरा सं. 20 और 21 में वर्णित कारणों के आधार पर परिसीमा के भीतर फाइल की गई है ।

23. इसलिए, हम कार्यालय द्वारा लगाए गए आक्षेपों को मान्य ठहराते हैं और अभिनिर्धारित करते हैं कि अपील परिसीमा द्वारा बाधित है । फिर भी, अपीलार्थी को यह अधिकार है कि वह विलम्ब को क्षमा करने के लिए आवेदन फाइल करे ।

अपील खारिज की गई ।

अवि.

श्रीब्रत देब

बनाम

बैंक आफ इंडिया

तारीख 16 जून, 2017

न्यायमूर्ति (डा.) सम्बूद्धा चक्रवर्ती

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 11, स्पष्टीकरण (v) और आदेश 2, नियम 2 – पूर्व न्याय के सिद्धांत का लागू होना – याची द्वारा फाइल की गई पूर्ववर्ती रिट याचिका में छुट्टी नगदीकरण की रकम मय ब्याज दिलाए जाने का दावा किया गया जो मंजूर हुई और न्यायालय ने मात्र छुट्टी नगदीकरण की रकम का संदाय किए जाने के लिए निर्देशित किया – याची द्वारा फाइल की गई पश्चात्वर्ती रिट याचिका में छुट्टी नगदीकरण के रूप में संवितरित रकम पर ब्याज के संदाय का दावा किया गया – पूर्ववर्ती रिट याचिका में ब्याज न दिलाए जाने का प्रभाव – यदि पूर्ववर्ती रिट याचिका में ब्याज के संदाय का आदेश पारित नहीं किया जाता तो यह धारणा की जाएगी कि न्यायालय ने ब्याज दिलाने से इनकार कर दिया, अतः न्यायालय को पश्चात्वर्ती रिट याचिका में ब्याज दिलाने की अधिकारिता नहीं है – पश्चात्वर्ती याचिका पूर्व न्याय के सिद्धांत द्वारा बाधित है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि याची बैंक आफ इंडिया में अधिकारी था और उसको वर्ष 2014 में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया । चूंकि बैंक प्राधिकारियों ने उसके पक्ष में छुट्टी नगदीकरण का संदाय नहीं किया, उसने 2015 में रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका का निस्तारण विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 3 दिसम्बर, 2015 को बैंक को यह निर्देश देते हुए कर दिया गया कि याची के पक्ष में पारित आदेश में उल्लिखित विशेषाधिकृत छुट्टी नगदीकरण का संदाय एक निश्चित अवधि के भीतर विधि अनुसार कर दिया जाए । बैंक ने इस आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की और इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 8 सितम्बर, 2016 के आदेश द्वारा अपील विचारार्थ स्वीकार करने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि इस विवाद्यक को कि क्या छुट्टी

नगदीकरण की रकम अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किए जा रहे कर्मचारी को संदेय है, का निर्णय माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पहले ही किया जा चुका है । स्वीकृत रूप से बैंक प्राधिकारियों ने इसके पश्चात् का संदाय विशेषाधिकृत छुट्टी नगदीकरण निर्गत कर दिया । तत्पश्चात्, मुकदमेबाजी का दूसरा चरण आरम्भ हुआ अर्थात् वर्तमान रिट याचिका जिसमें याची ने बैंक प्राधिकारियों के विरुद्ध 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बैंक द्वारा निर्गत किए गए विशेषाधिकृत छुट्टी नगदीकरण की रकम पर ब्याज का संवितरण कराए जाने के लिए परमादेश जारी किए जाने की प्रार्थना की है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह एक ऐसा मामला है जहां यद्यपि ब्याज प्रदान किए जाने के लिए की गई प्रार्थना को न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से इनकार नहीं किया गया, फिर भी यदि उसके द्वारा याचित अनुतोष प्रदान नहीं किया जाता, तो यह धारणा की जाएगी कि उस अनुतोष को प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया है । और धारणा के आधार पर यह इनकार किसी भी पक्ष को कोई नई कार्यवाही फाइल करने से विवर्जित करता है चूंकि वह कार्यवाही पूर्व आदेश के सिद्धांत द्वारा बाधित होगी । यह विधि का स्थिरीकृत सिद्धांत है कि पूर्व न्याय का सिद्धांत रिट कार्यवाहियों में भी लागू होता है । इस बिन्दु को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में निर्णीत किया गया है । पूर्व न्याय का सिद्धांत आदेश 2, नियम 2 से इस आशय में भिन्न है कि पूर्ववर्ती वादी पर यह कर्तव्य अधिरोपित करता है कि वह अपने दावे के समर्थन में उपलब्ध समस्त आधारों का आश्रय ले जबकि पश्चात्वर्ती उससे यह अपेक्षा करता है कि वह इसी स्पष्टीकरण से उत्पन्न समस्त अनुतोषों के लिए दावा करे । चूंकि याची ने पूर्ववर्ती रिट याचिका में समस्त अनुतोषों के लिए दावा किया है और अनुतोष का अत्यधिक बड़ा भाग उसको प्रदान नहीं किया गया । यह धारणा की जानी चाहिए कि पूर्ववर्ती निर्णय द्वारा उस अनुतोष को प्रदान किए जाने से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण (v) के क्रियान्वयन द्वारा इनकार किया गया है और यह दोनों ही कार्यवाहियों में प्रत्यक्षतः और सारभूत् रूप से अन्तर्वलित विवाद्यक था और है । धारणा के आधार पर पूर्ववर्ती निर्णय में किसी अनुतोष को प्रदान किए जाने से इनकार उसी अनुतोष को प्रदान करने से, यदि किसी पूर्ववर्ती कार्यवाही में धारणा के आधार पर प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया हो, तो न्यायालय की अधिकारिता को विवर्जित करता है । (पैरा 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1993]	ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1756 : **इनेसियो मार्टिन्स** बनाम **नारायण हरि** ;	13
[1971]	ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1676 : **पंजाब राज्य** बनाम **बी. डी. कौशल** ।	12

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2016 की रिट याचिका संख्या 26817.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत याचिका ।

याची की ओर से श्री प्रतीक मजूमदार

प्रत्यर्थी की ओर से श्री सौरव चक्रवर्ती

आदेश

न्यायालय में आज प्रत्युत्तर में फाइल किया गया शपथपत्र अभिलेख पर लिया जाए ।

2. वर्तमान रिट याचिका में अन्तर्वलित लघु बिन्दु विधिक अधिक है और तथ्यात्मक कम । तथापि, आवश्यक तथ्यों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है ।

3. याची बैंक आफ इंडिया में अधिकारी था और उसको वर्ष 2014 में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था । चूंकि बैंक प्राधिकारियों ने उसके पक्ष में छुट्टी नगदीकरण का संदाय नहीं किया, उसने 2015 में रिट याचिका 24983 (डब्ल्यू) फाइल की । रिट याचिका का निस्तारण विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 3 दिसम्बर, 2015 को बैंक को यह निर्देश देते हुए कर दिया गया कि याची के पक्ष में आदेश में उल्लिखित विशेषाधिकृत छुट्टी नगदीकरण का संदाय एक निश्चित अवधि के भीतर विधि अनुसार कर दिया जाए ।

4. बैंक ने इस आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की और इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 8 सितम्बर, 2016 के आदेश द्वारा अपील विचारार्थ स्वीकार करने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि इस विवाद्यक को कि क्या छुट्टी नगदीकरण की रकम अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किए जा रहे कर्मचारी को संदेय है, का निर्णय माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पहले ही किया जा चुका है ।

5. स्वीकृत रूप से बैंक प्राधिकारियों ने इसके पश्चात् विशेषाधिकृत छुट्टी नगदीकरण का संदाय याची के पक्ष में निर्गत कर दिया ।

6. तत्पश्चात्, मुकदमेबाजी का दूसरा चरण आरम्भ हुआ अर्थात् वर्तमान रिट याचिका जिसमें याची ने बैंक प्राधिकारियों के विरुद्ध 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बैंक द्वारा निर्गत किए गए विशेषाधिकृत छुट्टी नगदीकरण की रकम पर ब्याज का संवितरण कराए जाने के लिए परमादेश जारी किए जाने की प्रार्थना की है ।

7. यह एक ऐसा मामला है जहां याची और बैंक प्राधिकारियों, दोनों ने ही एक दूसरे को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किए गए अधिकारी के संबंध में छुट्टी नगदीकरण की संभाव्यता पर संबोधित किया है जो अनिर्णीत विषय नहीं चूंकि इस विवाद्यक को पहले ही निर्णीत किया जा चुका है । यह बैंक ही थी जिसने सेवा विनियमों में परिवर्तन के बाबत विभिन्न विवाद्यक उठाए थे, भारतीय बैंक एसोसिएशन द्वारा समय-समय पर अनेक परिपत्र जारी किए गए थे । मैंने बैंक को उन विवाद्यकों के संबंध में, जिनको उठाया तो गया है किन्तु जो स्थिरीकृत विधिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान रिट याचिका के निस्तारण के लिए सुसंगत नहीं हैं, के संबंध में शपथपत्र के रूप में रिपोर्ट फाइल करने का अवसर प्रदान किया ।

8. बैंक प्राधिकारियों की ओर से फाइल किए गए शपथपत्र को पढ़ने पर कोई भी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि वे मुख्य विवाद्यक को उठाने में चूक गए हैं । जहां तक इस रिट याचिका का संबंध है, ऐसा प्रतीत होता है कि बैंक मुख्य विवाद्यक अर्थात् इस रिट याचिका में छुट्टी नगदीकरण के विलम्बित संदाय पर ब्याज के संदाय के लिए कहे जाने की संभाव्यता के प्रश्न को उठाने में चूक गई है । यहां पर यह उल्लेख किया जाता है कि याची ने पूर्ववर्ती रिट याचिका में भी छुट्टी नगदीकरण की रकम पर 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज दिलाए जाने की प्रार्थना की थी । वास्तविकता यह है कि पूर्ववर्ती रिट याचिका में प्रार्थना (ख) वर्तमान रिट याचिका में मुख्य प्रार्थना (क) के समरूप है, एकमात्र अन्तर यह है कि याची वर्तमान रिट याचिका में बैंक द्वारा संवितरित रकम पर ब्याज के संदाय की प्रार्थना कर रहा है और उसने पूर्ववर्ती रिट याचिका में उन दिनों की संख्या का उल्लेख किया है जिनके संबंध में उसने ब्याज का हकदार होने का दावा किया है ।

9. अतः जो प्रश्न निर्णीत किया जाना है, यह है कि पूर्ववर्ती रिट

याचिका में ब्याज न प्रदान किए जाने का क्या प्रभाव है । श्री मजूमदार ने इस बाबत न्यायालय को सहमत करने का प्रयास किया कि जो कुछ भी कहा गया है और किया गया है, वह यह है कि क्या विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका का निस्तारण करते हुए ब्याज के संदाय से इनकार नहीं किया है । उन्होंने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 2 में समाविष्ट उपबंधों को निर्दिष्ट किया जिसमें अधिकथित किया गया है कि कोई वाद या किसी मूल याचिका में सम्पूर्ण दावा समाविष्ट होना चाहिए और यदि वादी दावे के किसी भाग के संबंध में वाद प्रस्तुत करने में विफल रहा तो वह उसके द्वारा इस प्रकार से छोड़े गए भाग पर प्रत्यर्थी के विरुद्ध दावा करने से विवर्जित हो जाएगा । श्री मजूमदार के अनुसार, यही कारण है कि उसने ब्याज के संदाय के लिए प्रार्थना की ।

10. यदि इसके विपरीत स्थिति होती, तो न्यायालय को प्रदान की गई रकम को छुट्टी नगदीकरण के रूप में संवितरित रकम पर ब्याज प्रदान करने में कोई कठिनाई न होती । यह विधि की सुस्थापित विधि है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 2 के समकक्ष सिद्धांत रिट याचिका के मामलों में लागू नहीं होते । इसलिए, यदि हम प्रथम रिट याचिका में इसका लोप कर देते, तो वह इसके लिए वर्तमान रिट याचिका में दावा कर सकता था ।

11. किन्तु, चूंकि वह पूर्ववर्ती रिट याचिका में ब्याज के स्वरूप में अनुतोष की मांग कर चुका है, वह उसी के लिए पश्चात्वर्ती रिट याचिका में दावा नहीं कर सकता यदि उसको वह अनुतोष प्रथम याचिका के निस्तारण के समय प्रदान नहीं किया गया । आन्वयिक पूर्व आदेश (Constructive Resjudicata) के सदृश सिद्धांत इस प्रकार के मामले में लागू होगा । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 का स्पष्टीकरण (v) अधिकथित करता है कि वादपत्र में याचित कोई भी अनुतोष, जिसको उक्त परन्तुक के कारण डिक्री द्वारा अभिव्यक्त रूप से प्रदान नहीं किया गया है, के संबंध में यह धारणा की जाएगी कि उस अनुतोष को प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया है ।

12. अतः, यह एक ऐसा मामला है जहां यद्यपि ब्याज प्रदान किए जाने के लिए की गई प्रार्थना को न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से इनकार नहीं किया गया, फिर भी यदि उसके द्वारा याचित अनुतोष प्रदान नहीं किया जाता, तो यह धारणा की जाएगी कि उस अनुतोष को प्रदान किए

जाने से इनकार कर दिया गया है । और धारणा के आधार पर यह इनकार किसी भी पक्ष को कोई नई कार्यवाही फाइल करने से विवर्जित करता है चूंकि वह कार्यवाही पूर्व आदेश के सिद्धांत द्वारा बाधित होगी । यह विधि का स्थिरीकृत सिद्धांत है कि पूर्व न्याय का सिद्धांत रिट कार्यवाहियों में भी लागू होता है । इस बिन्दु को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में निर्णीत किया गया है । इस संबंध में, **पंजाब राज्य** बनाम **बी. डी. कौशल**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट किया जाता है । यदि धारा 11 में समाविष्ट सिद्धांत रिट याचिका में लागू होते हैं, तो धारा 11 का स्पष्टीकरण भी रिट याचिका में समान बल के साथ लागू होंगे ।

13. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 2 और धारा 11 अत्यधिक आधारभूत रूप से अपने-अपने क्रियान्वयन के क्षेत्र में एक-दूसरे से भिन्न हैं । **इनेसियो मार्टिन्स** बनाम **नारायण हरि**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पूर्व न्याय का सिद्धांत आदेश 2, नियम 2 से इस आशय में भिन्न है कि पूर्ववर्ती वादी पर यह कर्तव्य अधिरोपित करता है कि वह अपने दावे के समर्थन में उपलब्ध समस्त आधारों का आश्रय ले जबकि पश्चात्वर्ती उससे यह अपेक्षा करता है कि वह इसी स्पष्टीकरण से उत्पन्न समस्त अनुतोषों के लिए दावा करे । चूंकि याची ने पूर्ववर्ती रिट याचिका में समस्त अनुतोषों के लिए दावा किया है और अनुतोष का अत्यधिक बड़ा भाग उसको प्रदान नहीं किया गया । यह धारणा की जानी चाहिए कि पूर्ववर्ती निर्णय द्वारा उस अनुतोष को प्रदान किए जाने से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण (v) के क्रियान्वयन द्वारा इनकार किया गया है और यह दोनों ही कार्यवाहियों में प्रत्यक्षतः और सारभूत रूप से अन्तर्वलित विवाद्यक था और है । धारणा के आधार पर पूर्ववर्ती निर्णय में किसी अनुतोष को प्रदान किए जाने से इनकार उसी अनुतोष को प्रदान करने से, यदि किसी पूर्ववर्ती कार्यवाही में धारणा के आधार पर प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया हो, तो न्यायालय की अधिकारिता को विवर्जित करता है ।

14. रिट याचिका खारिज की जाती है ।

15. वाद की लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा ।

---

[1] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1676.

[2] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1756.

16. यदि इस निर्णय की सत्यापित प्रति की शीघ्रता के आधार पर फोटोप्रति के लिए आवेदन किया जाता है, तो पक्षों को अपेक्षित औपचारिकताओं के अनुपालन के पश्चात् प्रदान कर दी जाएं ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

अवि.

(2018) 1 सि. नि. प. 530 **कलकत्ता**

श्री श्री ईश्वर महादेव और अन्य

बनाम

प्रदीप कुमार जैन

तारीख 7 सितम्बर, 2017

न्यायमूर्ति सोमेन सेन

पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 (1956 का 12) – धारा 14, 21 और 7 – किराए का संदाय न किए जाने के कारण किराएदार की बेदखली – वाद के समन की तामीली के पश्चात् किराएदार द्वारा किराए का संदाय न किए जाने के बाबत स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहना और उसके द्वारा मकान-मालिक/भवन स्वामी द्वारा किराया प्राप्त करने से इनकार के बाबत कोई साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाना या उसके द्वारा न्यायालय में किराया जमा करने में विफल रहना – किराएदार की प्रतिरक्षा समाप्त किए जाने योग्य है और वह किराएदारी वाले स्थान से बेदखल/निष्कासित किए जाने योग्य है ।

संक्षेप में वाद के तथ्य यह हैं कि वादी भवन संख्या 1 स्थित वुड स्ट्रीट, कोलकाता-700016 का स्वामी है । प्रतिवादी इसी भवन के भूतल पर स्थित यूनिट जी-II का किराएदार था जिसका क्षेत्रफल लगभग 391.67 वर्ग फीट है और साथ ही वह उसके साथ सटे हुए एक अन्य स्थान के अविभाजित भाग का भी किराएदार था जिसका क्षेत्रफल 192 वर्ग फीट है । प्रतिवादी की किराएदारी को तारीख 26 मार्च, 2016 के रिक्त करने के नोटिस द्वारा समाप्त कर दिया गया था, तत्पश्चात् उसके विरुद्ध बेदखली का वाद फाइल किया गया । वाद में प्रत्यर्थी-प्रतिवादी पर तारीख 31

अगस्त, 2016 को समन तामील हो गए । प्रत्यर्थी ने तारीख 20 दिसम्बर, 2016 को लिखित कथन फाइल किया । प्रत्यर्थी ने अगस्त, 2014 से किसी भी किराए का संदाय नहीं किया था और वह नगर पालिका की दरों पर करों और रख-रखाव का भी संदाय करने में विफल रहा था और उसने जानबूझकर उनके संदाय की अनदेखी की थी । वादी ने अभिकथित किया कि प्रतिवादी उक्त सभी संदायों में विफल रहने को दृष्टि में रखते हुए, पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 (वेस्ट बंगाल प्रमाइसिस टेनैंनसी एक्ट, 1956) की धारा 6(1)(ख) के अधीन चूककर्ता हो गया है । प्रतिवादी ने न तो किराए की बकाया रकम न्यायालय में जमा की और न ही उसने 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 7(2) के अधीन कोई आवेदन फाइल किया । याचियों ने दलील दी कि यद्यपि प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2016 को वादपत्र की प्रति के साथ समन प्राप्त कर लिए गए थे, किन्तु वह वादी को किराए की बकाया रकम का उस दर पर गणना करके, जिस पर उसके द्वारा अंतिम बार संदाय किया गया था, संदाय करने में विफल रहा और उसने जानबूझकर अनदेखा किया और न्यायालय में भी जमा नहीं किया और अंतिम बार संदाय किए गए किराए की दर पर किराया की समस्त बकाया रकम पर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज का भी संदाय नहीं किया । तत्पश्चात् किराएदार से कानून के अन्तर्गत अपेक्षित था कि वह प्रत्येक माह की 15 तारीख तक मासिक किराए की दर पर देय राशि के समतुल्य राशि मकान मालिक को संदाय करें या न्यायालय में जमा करें । वादी का कहना है कि प्रतिवादी ने एक माह की उपरोक्त अवधि के भीतर उक्त रकम को जमा नहीं किया और न ही उसने पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 7(2) के अधीन ब्याज सहित बकाए किराए कि राशि को न्यायालय में जमा करने के लिए कोई आवेदन फाइल किया । उक्त तथ्यों के आधार पर प्रतिवादी की प्रतिरक्षा को समाप्त किए जाने के लिए आवेदन फाइल किया गया है । आवेदन भवन स्वामी द्वारा प्रतिवादी-किराएदार द्वारा कब्जे का हस्तांतरण किए जाने के विरुद्ध उसकी प्रतिरक्षा समाप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया । आवेदन को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिवादी से वाद की सुनवाई के अनुक्रम के दौरान यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ दस्तावेज पेश करने के लिए कहा गया कि उसके द्वारा अगस्त, 2014 के पश्चात् या तो किराए का संदाय अधिरोपित किया गया था या 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम,

1956 की धारा 7(2) के अधीन कोई आवेदन फाइल किया गया था । प्रतिवादी अगस्त, 2014 के पश्चात् या उसके ऊपर समन की तामीली के एक माह के भीतर किराए के संदाय में विफल रहने के लिए कोई भी स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा । प्रतिवादी कोई भी ऐसा दस्तावेज प्रस्तुत कर पाने में विफल रहा जिससे कि वह यह दर्शित कर सके कि उसने किराए का संदाय अधिरोपित किया और वादी द्वारा उसको प्राप्त करने से इनकार किया गया था । कानून के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से यह अपेक्षा की गई है कि किराएदार मकान-मालिक को किराए का संदाय करेगा या समस्त बकाया किराया और साथ में पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 7(1) में उल्लिखित ब्याज के साथ न्यायालय में जमा कर देगा जिसमें विफल रहने पर वादी को यह हक होगा कि वह प्रतिवादी द्वारा उसकी किराएदारी वाले भाग का कब्जा किसी अन्य को हस्तगत किए जाने पर उसकी प्रतिरक्षा को समाप्त करने वाला आदेश अभिप्राप्त कर सके और वाद की सुनवाई के लिए आगे की कार्यवाही कर सके । प्रतिवादी यह दर्शित करने में भी विफल रहा है कि मकान-मालिक ने विहित अवधि के भीतर किराएदार द्वारा उस पर अधिरोपित किराया प्राप्त नहीं किया था । इसके अतिरिक्त, किराया स्वीकार करने से इनकार के मामले में 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम की धारा 21 में उल्लिखित तरीकों का अनुसरण किया जाना अपेक्षित है । प्रतिवादी किसी भी ऐसे दस्तावेज को प्रस्तुत कर पाने में असमर्थ रहा है जिससे यह दर्शित हो सके कि दोनों ही उपबंधों का कानूनी रूप से अनुपालन सुनिश्चित किया गया है । प्रतिवादी द्वारा चूक साबित हो चुकी है और क्षमा किए जाने योग्य नहीं है । 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम की धारा 7 के अधीन उपबंध कठोर प्रकृति के हैं और मेरे विचार में न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह 1956 के अधिनियम में किए गए संशोधन के प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखे । यदि किसी किराएदार को 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम की धारा 7 के अनुपालन के बिना प्रश्नगत संपत्ति के कब्जे में बने रहने की अनुज्ञा प्रदान कर दी जाती है, तो पुराने अधिनियम के संशोधन का उद्देश्य और प्रयोजन विफल हो जाएगा । न्यायालय के विचार में, इन स्वीकृत तथ्यों के आधार पर वादी याचिका में चाहे गए अनुतोषों को प्राप्त करने का हकदार हैं । कब्जे के हस्तांतरण के विरुद्ध प्रतिवादी की प्रतिरक्षा को समाप्त करने के लिए फाइल किया गया आवेदन मंजूर किया जाता है । (पैरा 3 और 4)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की सामान्य अपील सं. 2920.

पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 14, 21 और 7 के अंतर्गत किराएदार की प्रतिरक्षा समाप्त किए जाने हेतु आवेदन ।

उपस्थित पक्षों की ओर से सर्वश्री सुप्रतिम लाहा, गौतम राय और (सुश्री) सुभाश्री डे

आदेश

2. वादी भवन संख्या 1 स्थित वुड स्ट्रीट, कोलकाता-700016, पुलिस थाना शैक्सपीयर सरानी का, स्वामी है । प्रतिवादी इसी भवन संख्या 1, वुड स्ट्रीट, कोलकाता-700016 के भूतल पर स्थित यूनिट जी-II का किराएदार था जिसका क्षेत्रफल लगभग 391.67 वर्ग फीट (कुछ कम या ज्यादा) है और साथ ही वह उसके साथ सटे हुए एक अन्य स्थान का अविभाजित किराएदार भी था जिसका क्षेत्रफल कुल स्थान, जो 960 वर्ग फीट का है, के 1/5 अविभाजित भाग अर्थात् 192 वर्ग फीट है । प्रतिवादी की किराएदारी को तारीख 26 मार्च, 2016 के रिक्त करने के नोटिस द्वारा समाप्त कर दिया गया था, तत्पश्चात् उसके विरुद्ध बेदखली का वाद फाइल किया गया । वाद में प्रत्यर्थी-प्रतिवादी पर तारीख 31 अगस्त, 2016 को समन तामील हो गए थे । प्रत्यर्थी ने तारीख 20 दिसम्बर, 2016 को लिखित कथन फाइल किया । प्रत्यर्थी ने अगस्त, 2014 से किसी भी किराए का संदाय नहीं किया था और वह नगर पालिका की दरों पर करों और रख-रखाव का भी संदाय करने में विफल रहा था और उसने जानबूझकर उनके संदाय की अनदेखी की थी । वादी ने अभिकथित किया कि प्रतिवादी ने उक्त सभी संदायों में विफल रहने को दृष्टि में रखते हुए, पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 (वेस्ट बंगाल प्रमाइसिस टेनैंनसी एक्ट, 1956) की धारा 6(1)(ख) के अधीन चूककर्ता हो गया है । प्रतिवादी ने न तो किराए की बकाया रकम को न्यायालय में जमा किया है और न ही उसने 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 7(2) के अधीन कोई आवेदन फाइल किया है । याचियों ने दलील दी कि यद्यपि प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2016 को वादपत्र की प्रति के साथ समन प्राप्त कर लिए गए थे, किन्तु वह वादी को किराए की बकाया रकम का उस दर पर गणना करके जिस पर उसके द्वारा अंतिम बार संदाय किया गया था संदाय करने में विफल रहा और उसने जानबूझकर अनदेखा किया और न्यायालय में भी जमा नहीं किया और

अंतिम बार संदाय किए गए किराए की दर पर किराए की समस्त बकाया रकम पर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज का भी संदाय नहीं किया। तत्पश्चात् किराएदार से कानून के अन्तर्गत अपेक्षित हो जाता है कि वह प्रत्येक माह की 15 तारीख तक मासिक किराए की दर पर देय राशि के समतुल्य राशि मकान-मालिक को संदाय करे या न्यायालय में जमा करें। वादी का कहना है कि प्रतिवादी ने एक माह की उपरोक्त अवधि के भीतर उक्त रकम को जमा नहीं किया और न ही उसने पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 7(2) के अधीन ब्याज सहित बकाए किराए कि राशि को न्यायालय में जमा करने के लिए कोई आवेदन फाइल किया। उक्त तथ्यों के आधार पर प्रतिवादी की प्रतिरक्षा समाप्त किए जाने के लिए यह आवेदन फाइल किया गया।

3. प्रतिवादी से वाद की सुनवाई के अनुक्रम के दौरान यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ दस्तावेज पेश करने के लिए कहा गया कि उसके द्वारा अगस्त, 2014 के पश्चात् या तो किराए का संदाय अधिरोपित किया गया था या 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 7(2) के अधीन कोई आवेदन फाइल किया गया था। प्रतिवादी अगस्त, 2014 के पश्चात् या उसके ऊपर समन की तामीली के एक माह के भीतर किराए के संदाय में विफल रहने के लिए कोई भी स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा। प्रतिवादी कोई भी ऐसा दस्तावेज प्रस्तुत कर पाने में विफल रहा जिससे कि वह यह दर्शित कर सके कि उसने किराए का संदाय अधिरोपित किया और वादी द्वारा उसको प्राप्त करने से इनकार किया गया था। कानून के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से यह अपेक्षा की गई है कि किराएदार मकान-मालिक को किराए का संदाय करेगा या समस्त बकाया किराया और साथ में पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 7(1) में उल्लिखित ब्याज के साथ न्यायालय में जमा कर देगा जिसमें विफल रहने पर वादी को यह हक होगा कि वह प्रतिवादी द्वारा उसकी किराएदारी वाले भाग का कब्जा किसी अन्य को हस्तगत किए जाने पर उसकी प्रतिरक्षा को समाप्त करने वाला आदेश अभिप्राप्त कर सके और वाद की सुनवाई के लिए आगे की कार्यवाही कर सके। प्रतिवादी यह दर्शित करने में भी विफल रहा है कि मकान-मालिक ने विहित अवधि के भीतर किराएदार द्वारा उस पर अधिरोपित किराया प्राप्त नहीं किया था। इसके अतिरिक्त, किराया स्वीकार करने से इनकार के मामले में 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम की धारा 21 में उल्लिखित

तरीकों का अनुसरण किया जाना अपेक्षित है । प्रतिवादी किसी भी ऐसे दस्तावेज को प्रस्तुत कर पाने में असमर्थ रहा है जिससे यह दर्शित हो सके कि दोनों ही उपबंधों का कानूनी रूप से अनुपालन सुनिश्चित किया गया है । प्रतिवादी द्वारा चूक साबित हो चुकी है और क्षमा किए जाने योग्य नहीं है । 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम की धारा 7 के अधीन उपबंध कठोर प्रकृति के हैं और मेरे विचार में न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह 1956 के अधिनियम में किए गए संशोधन के प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखे । यदि किसी किराएदार को 1997 के पश्चिमी बंगाल स्थान किराएदारी अधिनियम की धारा 7 के अनुपालन के बिना प्रश्नगत संपत्ति के कब्जे में बने रहने की अनुज्ञा प्रदान कर दी जाती है, तो पुराने अधिनियम के संशोधन का उद्देश्य और प्रयोजन विफल हो जाएगा ।

4. मेरे विचार में, इन स्वीकृत तथ्यों के आधार पर वादी याचिका में चाहे गए अनुतोषों को प्राप्त करने का हकदार है । कब्जे के हस्तांतरण के विरुद्ध प्रतिवादी की प्रतिरक्षा को समाप्त करने के लिए फाइल किया गया आवेदन मंजूर किया जाता है ।

5. 2017 की सामान्य अपील संख्या 2920 का तद्नुसार निस्तारण किया जाता है ।

आवेदन मंजूर किया जाता है ।

अवि.

अदिति शाकर

बनाम

के. राममूर्ति

तारीख 6 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति प्रशान्त कुमार मिश्रा और न्यायमूर्ति अरविन्द सिंह चन्देल

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 7 और 8 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 7, नियम 11 – आर्य समाज मन्दिर में विवाह – विधिमान्यता – कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता – चूंकि कुटुम्ब न्यायालय को ही ऐसे मामले सुनने की अनन्य अधिकारिता है – अतः वाद को रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार करना और वाद में आगे कार्यवाही न करना न्यायोचित नहीं है ।

अपीलार्थी का वाद जो हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन प्रत्यर्थी के साथ विवाह अकृत और शून्य घोषित करने के लिए फाइल किया गया था, विचारण न्यायालय द्वारा वाद को रजिस्ट्रीकृत किए बिना ही खारिज कर दिया गया । अतः यह एफ. ए. एम. फाइल की गई । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने केवल एक पृष्ठ के आदेश द्वारा अपीलार्थी के वादपत्र को इस आधार पर रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार कर दिया कि अपीलार्थी ने स्वतः वादपत्र के पैरा 2 में यह कहा है कि उसका विवाह आर्य समाज मंदिर में सम्पन्न किया गया है जिसमें कर्मकांड और सप्तपदी सम्पन्न नहीं की गई थी, इसलिए हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार विधि की दृष्टि में कोई विवाह नहीं हुआ था । अतः अपीलार्थी के स्वयं के कथनानुसार वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि कोई विवाह नहीं हुआ था जैसा कि अधिनियम, 1955 के अधीन अनुध्यात है । न्यायालय को खेद है कि ऐसे कारण न्यायिक परीक्षा में कभी भी स्वीकार नहीं किए जा सकते क्योंकि प्रत्येक मामले में चाहे कोई वाद अधिनियम, 1955 की धारा 11 के अधीन विवाह को शून्य घोषित करने के लिए फाइल किया गया हो या अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन शून्यकरणीय घोषित करने के लिए फाइल किया गया हो, वादी अनिवार्य

रूप से यह अभिवचन करता या करती है कि चूंकि विधि की दृष्टि में कोई विवाह नहीं हुआ था और इसका यह अर्थ है कि पक्षकारों के विवाह की विधिमान्यता या वैवाहिक स्थिति उक्त अधिनियम के अधीन नहीं मानी जा सकती, भले ही पक्षकार हिन्दू हों । यदि विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारण को अनुज्ञात किया जाता है तो अपीलार्थी-वादी उपचाररहित हो जाएगी क्योंकि वह अधिनियम, 1984 की धारा 8 को दृष्टिगत करते हुए सिविल न्यायालय के समक्ष कोई वाद फाइल नहीं कर सकती । न्यायालय के सुविचारित मतानुसार आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य हैं और एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है । (पैरा 5, 6, 9 और 10)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2017]	आई. एल. आर. 2017 छत्तीसगढ़ 757 : **शिखा मजूमदार** उर्फ **शबीना बेगम और अन्य** बनाम **अनुतोष मजूमदार** ;	7
[2016]	ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 2161 : **बलराम यादव** बनाम **फुलमनिया यादव** ;	8, 9
[1987]	ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1353 : **कलक्टर भूमि अर्जन अनन्तनाग और अन्य** बनाम **श्रीमती खतीजी और अन्य** ।	3

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की एफ ए. एम. सं. 6.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री प्रवीन धुरन्धर

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री एच. बी. अग्रवाल और पंकज अग्रवाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रशान्त कुमार मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – सुना गया ।

2. अपीलार्थी का वाद जो हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 12 के अधीन प्रत्यर्थी के साथ विवाह अकृत और शून्य घोषित करने के लिए फाइल किया गया था,

विचारण न्यायालय द्वारा वाद को रजिस्ट्रीकृत किए बिना ही खारिज कर दिया गया ।

3. श्री एच. बी. अग्रवाल, ज्येष्ठ अधिवक्ता ने जिनकी सहायता श्री पंकज अग्रवाल, अधिवक्ता ने की, विलम्ब माफी के लिए अनुरोध का विरोध किया तथापि, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि वाद की विषय-वस्तु विवाह की वैधता से या पक्षकारों की वैवाहिक हैसियत से संबंधित है, जो उन्हें या कम से कम अपीलार्थी को उनके संपूर्ण जीवन में पीछा (परेशान) करेगी, और इस कारण से भी कि उच्चतम न्यायालय ने **कलक्टर भूमि अर्जन अनन्तनाग और अन्य** बनाम **श्रीमती खतीजी और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि विलम्ब की माफी के लिए अनुरोध पर विचार करते समय न्यायालय को मामले में पंडितवादी या अति-उत्साही मत नहीं अपनाना चाहिए और मामले को गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित करने के लिए सभी प्रयास करने चाहिए, हम 394 दिन के विलम्ब को माफ करने और अपील को गुण-दोष के आधार पर सुनने के लिए तैयार हैं ।

4. तद्नुसार अंतरिम आवेदन सं. 1 मंजूर किया जाता है और विलम्ब माफ किया जाता है ।

2017 की एफ. ए. एम. सं. 6

5. कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने केवल एक पृष्ठ के आदेश द्वारा अपीलार्थी के वादपत्र को इस आधार पर रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार कर दिया कि अपीलार्थी ने स्वतः वादपत्र के पैरा 2 में यह कहा है कि उसका विवाह आर्य समाज मंदिर में सम्पन्न किया गया है जिसमें कर्मकांड और सप्तपदी सम्पन्न नहीं की गई थी, इसलिए हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार विधि की दृष्टि में कोई विवाह नहीं हुआ था । अतः अपीलार्थी के स्वयं के कथनानुसार वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि कोई विवाह नहीं हुआ था जैसा कि अधिनियम, 1955 के अधीन अनुध्यात है ।

6. हमें खेद है कि ऐसे कारण न्यायिक परीक्षा में कभी भी स्वीकार नहीं किए जा सकते क्योंकि प्रत्येक मामले में चाहे कोई वाद अधिनियम, 1955 की धारा 11 के अधीन विवाह को शून्य घोषित करने के लिए फाइल किया गया हो या अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन शून्यकरणीय घोषित करने के लिए फाइल किया गया हो, वादी अनिवार्य

---

[1] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1353.

रूप से यह अभिवचन करता या करती है कि चूंकि विधि की दृष्टि में कोई विवाह नहीं हुआ था और इसका यह अर्थ है कि पक्षकारों के विवाह की विधिमान्यता या वैवाहिक स्थिति उक्त अधिनियम के अधीन नहीं मानी जा सकती, भले ही पक्षकार हिन्दू हों ।

7. इस न्यायालय द्वारा इस विवाद्यक पर कि कब कोई वाद रजिस्ट्रीकृत किए बिना आरम्भ में ही खारिज किया जा सकता है, **शिखा मजूमदार** उर्फ **शबीना बेगम और अन्य** बनाम **अनुतोष मजूमदार**[1] वाले मामले में विस्तारपूर्वक विचार किया गया था जिसमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन सुसंगत उपबंधों का और छत्तीसगढ़ सिविल न्यायालय नियमों का निर्देश करने के पश्चात् इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति प्रशान्त कुमार मिश्रा) न्यायपीठ के सदस्य थे, निर्णय के पैरा 34 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 4, 5, 6 और 7 में अन्तर्विष्ट उपबंधों और सिविल न्यायालय नियमों के नियम 37 से 41 के संयुक्त परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि कोई वादपत्र आरम्भ में ही तब खारिज किया जा सकता है जब यह समुचित रूप से तैयार न किया गया हो या स्पष्टतया परिसीमा से वर्जित हो अथवा समुचित रूप से स्टांपित न किया गया हो । कोई वादपत्र तब भी खारिज किया जा सकता है जब यह आदेश 7 के नियम 11 के खंड (क) से (च) के अधीन उपबंधित किसी रिष्टि के अन्तर्गत आता हो । तथापि, जब न्यायाधीश की यह राय हो कि वाद किसी विधि के अधीन या सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन उपबंधित किसी खंड के अधीन वर्जित नहीं है तो वाद को सामान्यतया रजिस्ट्रीकृत किया जाएगा और वाद रजिस्ट्रीकरण के बिना आरम्भ में ही खारिज किए जाने योग्य नहीं होगा ।"

8. अन्यथा भी, उच्चतम न्यायालय ने **बलराम यादव** बनाम **फुलमनिया यादव**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी व्यक्ति के विवाह और वैवाहिक स्थिति की विधिमान्यता के बारे में घोषणा के लिए कोई वाद या कोई कार्यवाही कुटुम्ब न्यायालय की अनन्य अधिकारिता के

---

[1] आई. एल. आर. 2017 छत्तीसगढ़ 757.

[2] ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 2161.

भीतर आती है क्योंकि कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 8 के अधीन ऐसी सभी अधिकारिताएं धारा 7 के अधीन आती हैं और सिविल न्यायालय की अधिकारिता की परिधि से बाहर हैं ।

9. उच्चतम न्यायालय द्वारा **बलराम यादव** (पूर्वोक्त) वाले मामले में स्थापित विधि को दृष्टिगत करते हुए यदि विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारण को अनुज्ञात किया जाता है तो अपीलार्थी-वादी उपचाररहित हो जाएगी क्योंकि वह अधिनियम, 1984 की धारा 8 को दृष्टिगत करते हुए सिविल न्यायालय के समक्ष कोई वाद फाइल नहीं कर सकती ।

10. हमारे सुविचारित मतानुसार आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है और एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है । मामला विचारण न्यायालय को वाद रजिस्ट्रीकृत करने और विधि के अनुसार वाद विनिश्चित करने के लिए आगे कार्यवाही करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाता है ।

11. अपीलार्थी तारीख 28 जुलाई, 2017 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगी ।

12. विचारण न्यायालय को अभिलेख तुरन्त वापस भेजा जाए ।

13. अपील ऊपर उल्लिखित सीमा तक मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

सुमित नय्यर

बनाम

माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड

तारीख 14 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति आलोक अराधे और न्यायमूर्ति संजीव कुमार

श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1988 (1988 का 16) – धारा 5 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 12] – 1988 के अधिनियम के अन्तर्गत गठित श्री माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन राज्य का दर्जा नहीं रखता और इसलिए श्री माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड के विरुद्ध मूल अधिकारों के अतिलंघन का अभिकथन करने वाली याचिका पोषणीय नहीं है ।

श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1988 – धारा 5 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 226] – जनहित याचिका में जनहित के तत्व का अन्तर्वलित होना – जनहित याचिका में जनहित के तत्व का अन्तर्वलित होना एक अनिवार्य शर्त है और साथ ही राज्य या उसके कृत्यकारियों द्वारा लिया गया निर्णय ऐसा होना चाहिए जो जनहित के विरुद्ध हो या जनता को सूचित किए बिना एकपक्षीय रूप से पारित किया गया हो ।

श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1988 – धारा 5 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 226] – जनहित याचिका को सुने जाने का अधिकार – याची को यह दर्शित करना चाहिए कि वह राज्य अथवा राज्य के कृत्यकारियों द्वारा जनहित के विरुद्ध लिए गए निर्णय से स्वयं पीड़ित है या वह जनहित के विरुद्ध किए जाने वाले कार्यों का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है या राज्य अथवा राज्य के कृत्यकारियों द्वारा जनहित विरोधी कार्यों से पीड़ित लोगों ने उससे सम्पर्क किया है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि वर्तमान याचिका द्वारा, जो एक व्यवसायरत वकील द्वारा जनहित में फाइल की गई है, में तारीख 11 मार्च, 2008 और साथ ही तारीख 31 मई, 2008 के आदेशों, जिनके द्वारा माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड की 43वीं बोर्ड बैठक में आरती के लिए एक वयस्क

व्यक्ति द्वारा सोलह हजार रुपए की राशि का संदाय किए जाने और कतिपय विशेष अवसरों पर, जिसको रिट याचिका में श्रद्धा सुमन विशेष पूजा दर्शन की पूजा संपादित किए जाने के लिए इक्कीस हजार रुपए की राशि का संदाय किए जाने और साथ ही श्री माता वैष्णो देवी के मंदिर में अट्टका आरती संपादित किए जाने के लिए एक हजार रुपए की राशि का संदाय किए जाने के रूप में उल्लिखित किया गया है, का निर्णय लिया गया है, को अभिखंडित किए जाने की ईप्सा की गई है । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने ओमकार शर्मा और अन्य वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि श्राइन बोर्ड का गठन एक कानून के अन्तर्गत हुआ है और उसकी कानूनी हैसियत है, फिर भी किसी भी प्रकार के सरकार के वित्तीय, कार्यकारी या प्रशासनिक नियंत्रण के बिना इसको संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य या प्राधिकारी नहीं कहा जा सकता और इसलिए श्राइन बोर्ड के विरुद्ध मूल अधिकारों के प्रवर्तन की ईप्सा करने वाली रिट याचिका पोषणीय नहीं है । यहां पर यह उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इसी प्रकार के विचार भूरी नाथ और अन्य वाले मामले में व्यक्त किए गए हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा विधि की उपरोक्त प्रतिपादना को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट है कि श्राइन बोर्ड के विरुद्ध फाइल की गई रिट याचिका, जिसके द्वारा मूल अधिकारों के प्रवर्तन की ईप्सा की गई है, पोषणीय नहीं है । इसलिए, इस याचिका में कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता । तद्नुसार, प्रथम विवाद्यक का उत्तर दिया जाता है । इस मामले में तथ्यों पर उपरोक्त सुस्थापित विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में विचार किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में रिट याचिका के परिशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह रिट याचिका याची के सुने जाने के अधिकार के बाबत कुछ भी नहीं कहा गया है । याची ने अपनी रिट याचिका में न तो यह अभिकथित किया है कि उसने कभी भी श्री माता वैष्णो देवी के तीर्थ-मंदिर के दर्शन किए हैं और न ही यह अभिकथित किया है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि श्री माता वैष्णो देवी के दर्शन के लिए आने वाली भोली-भाली जनता को असुविधा का सामना करना पड़ रहा है । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना भी आवश्यक है कि याची ने इस बात का प्रकटीकरण कहीं पर भी नहीं किया है कि किसी सामान्य जन ने, जो समाज के वंचित वर्ग से संबंधित है, याची से रिट याचिका में उठाई गई

शिकायतों के बाबत याची से कभी भी संपर्क स्थापित किया । अतः इस याचिका में आवश्यक विवरणों का अभाव है और इस याचिका को समाज के किसी वंचित वर्ग, जो अपनी गरीबी और अशिक्षा के कारण इस न्यायालय की शरण में आने में असमर्थ है, की ओर से फाइल नहीं किया गया है । इसलिए, न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याची को जनहित में इस याचिका को फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है । रिट याचिका की सघन संवीक्षा से न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यह रिट याचिका जनहित के किसी भी तत्व का प्रकटीकरण नहीं करती या इसके माध्यम से ऐसा कोई विवाद्यक नहीं उठाया गया है जो सामान्य जनता से संबंधित हो । यहां पर यह उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा कि प्रत्येक दर्शनार्थी को, जो श्री माता वैष्णो देवी के दर्शन के लिए मंदिर जाता है, दर्शन करने का अधिकार है । गर्भ गृह में आरती के समय अट्टका आरती के संबंध में केवल 30 प्रतिशत दर्शनार्थियों की सीमा तक संदाय का उपबंध किया गया है । श्राइन बोर्ड ने अपनी 43वीं बैठक में इस बात का उल्लेख किया है कि ऐसे बहुत से लोग थे जो आरती में सम्मिलित होना चाहते थे और उनको प्रवेश के समय गर्भ गृह में अपनी उपस्थिति को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ अनेकों बार श्राइन बोर्ड के कर्मचारियों को अनुचित तरीके से रुकावट के लिए कीमत प्रेरित करनी पड़ती थी । अतः, यह निर्णय लिया गया कि क, ख और ग श्रेणियों के दर्शनार्थियों के लिए नियमित रूप से एक न्यूनतम बाधा का शुल्क विहित कर दिया जाए । न्यायालय की सुविचारित राय में श्राइन बोर्ड द्वारा लिया गया पूर्वोक्त विनिश्चय एक सुविवेचित विनिश्चय है और बृहत्तर लोक हित में और तीर्थ यात्रियों के हित में है और न्यायालय इस विनिश्चय में मध्यक्षेप करने का कोई आधार नहीं पाता । इसलिए इस रिट याचिका में जनहित का कोई भी तत्व अन्तर्वलित नहीं है । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है कि आक्षेपित आदेश वर्ष 2008 में पारित किए गए थे और रिट याचिका आठ वर्षों के पश्चात् फाइल की गई है और इसलिए यह याचिका स्पष्टतः विलम्ब और चूकों से ग्रसित है । यह अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है कि विलम्ब और चूकों के सिद्धांत जनहित मुकदमेबाजी पर भी लागू होते हैं । अतः यह रिट याचिका विलम्ब और चूकों से ग्रसित है जिनके लिए याची द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । [पैरा (I), 9, 9(III) और 9(IV)]

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	2016 (2) जे. के. जे. 729 : **एस. ओ. एस. इन्टरनेशनल और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य** ;	2
[2015]	(2015) 4 एस. सी. सी. 801 = 2015 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 259 : **बलवंत सिंह** बनाम **पुलिस कमिश्नर और अन्य** ;	2
[2015]	(2015) 13 एस. सी. सी. 702 : **रोहित पांडे** बनाम **भारत संघ** ;	8
[2013]	(2013) 2 एस. सी. सी. 398 = 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5802 : **किशोर समरीते** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	7
[2013]	(2013) 4 एस. सी. सी. 465 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 58 : **अय्यूबखान नूरखान पठान** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ;	7
[2010]	2010 (5) जे. के. जे. 611 (एस. सी.) : **भूरी नाथ और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य** ;	3
[2010]	(2010) 3 एस. सी. सी. 402 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2550 : **उत्तरांचल राज्य** बनाम **बलवंत सिंह चौफल और अन्य** ;	2, 7
[2007]	(2007) 4 एस. सी. सी. 380 = 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2045 : **विश्वनाथ चतुर्वेदी** बनाम **भारत संघ** ;	7
[2006]	(2006) 3 एस. सी. सी. 434 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1489 : **बाम्बे डाइंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड** बनाम **बाम्बे इनवायरनमेंट एक्शन ग्रुप** ;	9

[2005]	(2005) 4 एस. सी. सी. 649 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2677 : **जी. टेलीफिल्स** बनाम **भारत संघ** ;	2
[2005]	(2005) 1 एस. एल. जे. 260 (जे. एण्ड के.) : **ओमकार शर्मा और अन्य** बनाम **श्री माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड** ;	3
[2005]	(2005) 1 एस. सी. सी. 590 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 540 : **दाताराज नाथूजी थवारे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ;	3
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 349 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 280 : **अशोक कुमार पाण्डेय** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	3,7
[2004]	(2004) 12 एस. सी. सी. 634 = 2004 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5402 : **चैन सिंह** बनाम **माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड** ;	2
[2003]	(2003) 7 एस. सी. सी. 546 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 561 : **गुरुआयुर देवस्वोम् प्रबंध समिति** बनाम **सी. के. राजन** ;	2
[2002]	(2002) 2 एस. सी. सी. 333 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 350 : **बालको एम्प्लायीज यूनियन (रजिस्टर्ड)** बनाम **भारत संघ** ;	6
[1992]	(1992) 4 एस. सी. सी. 605 = ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1407 : **कृष्णस्वामी** बनाम **भारत संघ** ;	6
[1992]	(1992) 4 एस. सी. सी. 653 = ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 280 : **सिमरनजीत सिंह मान** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	6
[1991]	(1991) 3 एस. सी. सी. 756 : **जनता दल** बनाम **एच. एस. चौधरी** ;	5

[1981] (1981) 3 एस. सी. सी. 235 = ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 1473 :
पीपूल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम **भारत संघ** ; 4

[1981] (1981) (सप्ली.) एस. सी. सी. 87 = ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 :
एस. पी. गुप्ता बनाम **भारत संघ** । 4

रिट अधिकारिता : 2016 की जनहित रिट याचिका सं. 14.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री डी. सी. रैना, वरिष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ अनुज दीवान रैना

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अनिल वर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आलोक अराधे ने दिया ।

न्या. अराधे – इस याचिका द्वारा, जो इस न्यायालय में व्यवसायरत एक वकील द्वारा जनहित में फाइल की गई है, याची ने तारीख 11 मार्च, 2008 और साथ ही तारीख 31 मई, 2008 के आदेशों, जिनके द्वारा माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड (जिसको संक्षेप में "श्राइन बोर्ड" कहा गया है) की 43वीं बोर्ड बैठक में आरती के लिए एक वयस्क व्यक्ति द्वारा सोलह हजार रुपए की राशि का संदाय किए जाने और कतिपय विशेष अवसरों पर, जिसको रिट याचिका में श्रद्धा सुमन विशेष पूजा दर्शन की पूजा संपादित किए जाने के लिए इक्कीस हजार रुपए की राशि का संदाय किए जाने और साथ ही श्री माता वैष्णो देवी के मंदिर में अट्‌टका आरती संपादित किए जाने के लिए एक हजार रुपए की राशि का संदाय किए जाने के रूप में उल्लिखित किया गया है, का निर्णय लिया गया है, को अभिखंडित किए जाने की ईप्सा की है ।

2. याची जो हमारे समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ, ने निवेदन किया कि अधिकारिता के नियमों में जनहित मुकदमेबाजी में शिथिलता प्रदान की जानी चाहिए और जहां जनसामान्य के संवैधानिक अधिकारों के अतिलंघन का प्रश्न अन्तर्वलित है, जनहित मुकदमेबाजी पर विचार किया जाना चाहिए । उन्होंने आगे निवेदन किया कि तारीख 11 मार्च, 2008 और

31 मार्च, 2008 के आक्षेपित आदेश संविधान के अनुच्छेद 14 और 25 का अतिक्रमण करते हैं और इन आदेशों को पारित किए जाने में कोई न्यायोचित्य प्रतीत नहीं होता । उन्होंने यह निवेदन भी किया कि 1988 के श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम की धारा 18 (जिसको संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) प्रत्यर्थियों को उपरोक्त आक्षेपित आदेश पारित करने का अधिकार प्रदान नहीं करती । उन्होंने यह दलील भी दी कि श्राइन बोर्ड के पास पर्याप्त निधियां हैं और इसलिए आक्षेपित आदेश पारित करने का कोई भी न्यायोचित्य बिल्कुल नहीं है । याची ने अपने निवेदनों के समर्थन में **एस. ओ. एस. इन्टरनेशनल और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक विनिश्चय और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **गुरुआयुर देवस्वोम् प्रबंध समिति** बनाम **सी. के. राजन**[2], **चैन सिंह** बनाम **माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड**[3], **जी. टेलीफिल्स** बनाम **भारत संघ**[4], **उत्तरांचल राज्य** बनाम **बलवंत सिंह चौफल और अन्य**[5] और **बलवंत सिंह** बनाम **पुलिस कमिश्नर और अन्य**[6] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों को निर्दिष्ट किया है ।

3. इसके विपरीत प्रत्यर्थी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री डी. सी. रैना ने निवेदन किया कि प्रस्तुत रिट याचिका वास्तव में एक जनहित याचिका है और श्राइन बोर्ड के सदस्य, जो प्रतिष्ठित पृष्ठभूमि से संबंधित होते हैं, ने एक सूझबूझ से भरा हुआ निर्णय लिया है और पूर्वोक्त विनिश्चय सम्यक् रूप से विचारविमर्श के पश्चात् लिया गया है और श्राइन बोर्ड धारा 18(1) और साथ ही धारा 18(9) के अधीन इस प्रकार के आदेशों को पारित करने के लिए सशक्त है । उन्होंने निवेदन किया कि रिट याचिका में याची को सुने जाने के अधिकार के संबंध में कोई प्रकथन नहीं किया गया है और यह रिट याचिका जनहित याचिका के अधिक्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आती । उन्होंने यह निवेदन भी किया कि बोर्ड द्वारा तीर्थ यात्रियों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए सुविचारित नीतिगत विनिश्चय लिया गया है और यह न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए

---

[1] 2016 (2) जे. के. जे. 729.

[2] (2003) 7 एस. सी. सी. 546 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 561.

[3] (2004) 12 एस. सी. सी. 634 = 2004 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5402.

[4] (2005) 4 एस. सी. सी. 649 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2677.

[5] (2010) 3 एस. सी. सी. 402 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2550.

[6] (2015) 4 एस. सी. सी. 801 = 2015 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 259.

श्राइन बोर्ड द्वारा लिए गए नीतिगत विनिश्चयों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता । उन्होंने यह दलील भी दी कि रिट याचिका विलम्ब और चूकों से ग्रसित है । उन्होंने यह दलील भी दी कि श्राइन बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन नहीं है और इसलिए संविधान के अनुच्छेदों 14 और 25 के अधीन मूल अधिकार के उल्लंघन का अभिवाक् भ्रांतिपूर्ण है । उन्होंने यह दलील भी दी कि रिट याचिका में किए गए प्रकथन और शपथपत्र जनहित मुकदमेबाजी फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय द्वारा विरचित नियमों की अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरते । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने इन निवेदनों के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा **अशोक कुमार पाण्डेय** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1], **ओमकार शर्मा और अन्य** बनाम **श्री माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड**[2], **दाताराज नाथूजी थवारे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[3] और **भूरी नाथ और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य**[4] वाले मामले में दिए गए विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया ।

4. हमने पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया । इस जनहित मामले में हमारे विचारार्थ निम्नलिखित विवाद्यक उद्भूत होते हैं :–

(i) क्या श्राइन बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 12 के अन्तर्गत राज्य का अभिकरण हैं और परिणामस्वरूप क्या उसके विरुद्ध मूल अधिकारों के अतिक्रमण के संबंध में कोई अभिवाक् लिया जा सकता है ?

(ii) क्या याची को इस रिट याचिका को पोषणीय बनाए रखने की अधिकारिता प्राप्त है ?

(iii) क्या इस रिट याचिका, जिसको जनहित में फाइल किया गया है, में जनहित का कोई संघटक अन्तर्वलित है ?

(iv) क्या यह रिट याचिका विलम्ब और चूक से ग्रसित है ?

(v) क्या यह रिट याचिका जनहित मुकदमेबाजी फाइल किए जाने के संबंध में इस न्यायालय द्वारा विरचिति नियमों की अपेक्षाओं के पुष्टिकरण में है ?

---

[1] (2004) 3 एस. सी. सी. 349 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 280.
[2] (2005) 1 एस. एल. जे. 260 (जे. एण्ड के.).
[3] (2005) 1 एस. सी. सी. 590 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 540.
[4] 2010 (5) जे. के. जे. 611 (एस. सी.).

अब हम पूर्वोक्त विवाद्यकों पर एक-एक करके विचार करेंगे :–

(I) **क्या श्राइन बोर्ड राज्य का अभिकरण है** –

इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **ओमकार शर्मा और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि श्राइन बोर्ड का गठन एक कानून के अन्तर्गत हुआ है और उसकी कानूनी हैसियत है, फिर भी किसी भी प्रकार के सरकार के वित्तीय, कार्यकारी या प्रशासनिक नियंत्रण के बिना इसको संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य या प्राधिकारी नहीं कहा जा सकता और इसलिए श्राइन बोर्ड के विरुद्ध मूल अधिकारों के प्रवर्तन की ईप्सा करने वाली रिट याचिका पोषणीय नहीं है । यहां पर यह उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इसी प्रकार के विचार **भूरी नाथ और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा विधि की उपरोक्त प्रतिपादना को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट है कि श्राइन बोर्ड के विरुद्ध फाइल की गई रिट याचिका, जिसके द्वारा मूल अधिकारों के प्रवर्तन की ईप्सा की गई है, पोषणीय नहीं है । इसलिए, इस याचिका में कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता । तद्नुसार, प्रथम विवाद्यक का उत्तर दिया जाता है ।

(II) **सुने जाने का अधिकार** –

सामान्यतः, हमको [विवाद्यक संख्या (i) के निस्तारण के पश्चात] इस मामले में आगे अग्रसर नहीं होना चाहिए था, तथापि, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अधिवक्ताओं के मध्य जनहित याचिका फाइल करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है । इसलिए, हमने उचित समझा कि इस विवाद्यक पर विचार किया जाए । उच्चतम न्यायालय ने **एस. पी. गुप्ता** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि जहां किसी व्यक्ति या लोगों के किसी विशिष्ट वर्ग के साथ किसी संवैधानिक या विधिक उपबंध के अतिलंघन में या बिना विधि के प्राधिकार के कोई भार अधिरोपित किया जाता है या इस प्रकार का कोई विधिक अन्याय या विधिक क्षति या अवैध भार की धमकी दी जाती है या यदि ऐसा कोई व्यक्ति या लोगों का कोई विशिष्ट वर्ग गरीबी, निस्सहायता या अशक्तता या सामाजिक या आर्थिक रूप से वंचित स्थिति के कारण अनुतोष के लिए न्यायालय की शरण में जाने में असमर्थ होता है, तो समाज का कोई भी सदस्य उस व्यक्ति या व्यक्तियों के विशिष्ट वर्ग के किसी भी मूल अधिकार के भंग के मामले में

---

[1] (1981) (सप्ली.) एस. सी. सी. 87 = ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149.

अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष समुचित निर्देश, आदेश या रिट के लिए आवेदन कर सकता है । **पीपूल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जनहित मुकदमेबाजी को इस न्यायालय के समक्ष जनहित को प्रोन्नत करने या उसका समर्थन करने के प्रयोजनार्थ लाया जाता है जिसकी यह अपेक्षा होती है कि बड़ी संख्या में लोगों, जो गरीब, अनभिज्ञ हैं या सामाजिक या आर्थिक रूप से वंचित स्थिति में हैं, के संवैधानिक या विधिक अधिकारों के अतिक्रमण को अनदेखा न किया जाए और वह अनिस्तारित न रह जाए ।

5. **जनता दल** बनाम **एच. एस. चौधरी**[2] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि केवल उसी व्यक्ति को सुने जाने का अधिकार होगा जो सद्भावनापूर्वक कार्य कर रहा है और जिसका जनहित याचिका की कार्यवाही में पर्याप्त हित है और केवल वही व्यक्ति गरीबों और जरूरतमंदों, जो मूल अधिकारों के अतिक्रमण को बर्दाश्त करने के लिए विवश है, की सहायता करने के प्रयोजनार्थ न्यायालय की शरण ले सकता है किन्तु कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लाभ या निजी लाभ या राजनैतिक उद्देश्य या परोक्ष रूप से किसी लाभ को प्राप्त करने के लिए इस अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता ।

6. **कृष्णस्वामी** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि सामान्यतः, केवल उसी व्यक्ति को, जो व्यथित है और प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित है, को स्वयं के लिए अनुतोष प्राप्त करने का अधिकार है जब तक कि वह किसी पर्याप्त कारणवश ऐसा करने से अशक्त नहीं हो जाता और जिस कारणवश किसी अन्य को उसकी ओर से अनुतोष की ईप्सा करने की अनुज्ञा प्राप्त हो जाती है । ऐसी स्थिति में भी दावा सारतः प्रभावित व्यक्ति द्वारा किया जाता है, यद्यपि यह हो सकता है कि उस दावे का स्वरूप भिन्न हो और इसीलिए ऐसा अभिव्यक्त रूप से अभिकथित किया गया है । **सिमरनजीत सिंह मान** बनाम **भारत संघ और अन्य**[4] वाले मामले में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा यही विचार व्यक्त किए

---

[1] (1981) 3 एस. सी. सी. 235 = ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 1473.
[2] (1991) 3 एस. सी. सी. 756.
[3] (1992) 4 एस. सी. सी. 605 = ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1407.
[4] (1992) 4 एस. सी. सी. 653 = ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 280.

गए हैं । **बालको एम्प्लायीज यूनियन (रजिस्टर्ड)** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जनहित मुकदमेबाजी के प्रयोजनार्थ निम्नलिखित मापदंडों का पालन किया जाना चाहिए, अर्थात्, क्या प्रभावित व्यक्ति समाज के वंचित वर्गों से संबंध रखने वाले हैं (अर्थात् महिलाएं, बच्चे, बंधुआ मजदूर, असंगठित क्षेत्र के श्रमिक इत्यादि), जहां शोषण (अर्थात् शिशुओं के अंतर्देशीय अंगीकरण, वेश्याओं के बच्चों कि शिक्षा इत्यादि) से बचाव के लिए न्यायिक रूप से विधि रचना आवश्यक हो गई है, जहां किसी याचिका को फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ विषय व्यक्तिगत प्रकृति के नहीं है बल्कि जो बड़ी संख्या में लोगों से संबंधित है (जैसे कि बंधुआ मजदूर, विचाराधीन बंदी इत्यादि), जहां लोकतान्त्रिक संस्थाओं (न्यायपालिका की स्वतंत्रता, शिकायत निस्तारण फोरमों की विद्यमानता) की पुनीतता के संरक्षण के लिए न्यायिक मध्यक्षेप आवश्यक हो गया है और जहां विकास से संबंधित प्रशासनिक विनिश्चय पर्यावरण के लिए हानिकर हो गए हैं और प्राकृतिक संसाधनों जैसे कि हवा या पानी के बाबत लोगों के अधिकार खतरे में हैं ।

7. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **देवस्वम मैनेजिंग कमेटी** (उपरोक्त) वाले मामले में जनहित मुकदमेबाजी पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ सिद्धांतों पर संक्षेप में विचार करते हुए अभिनिर्धारित किया कि किसी भी हितबद्ध पक्ष की पहल पर उस व्यक्ति, जो वंचित स्थिति का सामना कर रहा है और इस कारणवश न्यायालय की शरण में जाने की स्थिति में नहीं है, के कल्याण के लिए फाइल की गई जनहित मुकदमेबाजी पर विचार किया जाना चाहिए । **अशोक कुमार पाण्डेय** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि जनहित मुकदमेबाजी में वास्तविक और असली जनहित अन्तर्वलित होना चाहिए, न कि मात्र Adventure of knight Erran (अर्थात् सारे जहां में घूमने वाले शूरवीर जो लोगों की सहायता करने के लिए साहसिक कार्य करता है) और poke ones nose into for a probe (अर्थात् किसी के द्वारा ऐसी जांच पड़ताल के लिए जबरदस्ती शोर मचाया जाना जिससे उसका कोई सारोकार नहीं है) । जनहित मुकदमेबाजी की अधिकारिता का अवलंब किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के निकाय द्वारा व्यक्तिगत कारणोंवश या व्यक्तिगत दुर्भावना या

---

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 333 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 350.

[2] (2004) 3 एस. सी. सी. 349 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 280.

शत्रुता के समाधान के लिए नहीं लिया जा सकता । अवांछनीय मुकदमेबाजों द्वारा न्याय के अनुक्रम को न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का आश्रय लिए जाने के द्वारा प्रदूषित किए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जानी चाहिए । केवल उसी व्यक्ति को सुने जाने का अधिकार है जो सद्भावनापूर्वक कार्य कर रहा है और जो जनहित मुकदमेबाजी की कार्यवाहियों में पर्याप्त हित रखता है । न्यायालय से भी यह अपेक्षित है कि वह आवेदक के प्रत्यायकों के बाबत संतुष्ट हो, उसके द्वारा दी गई सूचना प्रथमदृष्ट्या सत्य प्रतीत होनी चाहिए और वह अस्पष्ट और अनिश्चित नहीं होनी चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त विनिश्चय में चेतावनी दी है और अभिनिर्धारित किया है कि अब उचित समय आ गया है कि उन याचिकाओं को छांट कर अलग किया जाए जिनको यद्यपि जनहित याचिका कहा जाता है, किन्तु वे वास्तव और कुछ नहीं बल्कि प्रचार हित मुकदमेबाजी है । उच्चतम न्यायालय ने **विश्वनाथ चतुर्वेदी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में जनहित मुकदमेबाजी की पोषणीयता के विवाद्यक को निर्णीत करते हुए अभिनिर्धारित किया है कि किसी जनहित याचिका की पोषणीयता के विवाद्यक को पर्याप्त रूप से निर्णीत करते हुए सभी याचियों के हितों का परीक्षण किया जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने **उत्तरांचल राज्य** बनाम **बलवंत सिंह चौफल और अन्य**[2] वाले मामले में जनहित मुकदमेबाजी पर विचार किए जाने से संबंधित सिद्धांतों पर पुनः एक बार संक्षेप में विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को याचिका पर विचार करने के पूर्व प्रथमदृष्ट्या इस बाबत संतुष्ट होना चाहिए कि जनहित मुकदमेबाजी सारभूत रूप से अन्तर्वलित है और उसमें बृहत्तर जनहित और साथ ही याची के प्रत्यय अन्तर्वलित है । उच्चतम न्यायालय ने **किशोर समरीते** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में जनहित मुकदमेबाजी फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ मुकदमेबाजों की बाध्यताओं, जिनका पालन मुकदमेबाजों को न्यायालय की शरण लेने के पूर्व करना पड़ता है, को रेखांकित करने वाले सिद्धांतों और विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के परिणामों को एक बार पुनः अधिकथित किया । **अय्यूबखान नूरखान पठान** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[4] वाले

---

[1] (2007) 4 एस. सी. सी. 380 = 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2045.

[2] (2010) 3 एस. सी. सी. 402 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2550.

[3] (2013) 2 एस. सी. सी. 398 = 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5802.

[4] (2013) 4 एस. सी. सी. 465 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 58.

मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को जनहित मुकदमेबाजी में इस बात को सुनिश्चित करना चाहिए कि मामले में वास्तविक जनहित का तत्व अन्तर्वलित है ।

8. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **रोहित पांडे** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में एक अधिवक्ता द्वारा फाइल किए गए जनहित मुकदमे पर विचार करते हुए अभिनिर्धारित किया कि जब विधि व्यवसाय का कोई सदस्य (अधिवक्ता) जनहित मुकदमेबाजी फाइल करता है, तो यह अपेक्षा की जाती है कि वह जनहित मुकदमेबाजी गंभीरतापूर्वक और आवश्यक अनुसंधान के पश्चात् फाइल की गई है और यदि वह रिट याचिका भ्रांत धारणा पर आधारित पाई जाती है, तो उसको भारी लागत, जो इस प्रकार के मामलों में उदाहरण बन सके, अधिरोपित किए जाने के द्वारा खारिज कर दिया जाना चाहिए ।

9. इस मामले में तथ्यों पर उपरोक्त सुस्थापित विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में विचार किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में रिट याचिका के परिशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह रिट याचिका याची के सुने जाने के अधिकार के बाबत कुछ भी नहीं कहा गया है । याची ने अपनी रिट याचिका में न तो यह अभिकथित किया है कि उसने कभी श्री माता वैष्णो देवी के तीर्थ-मंदिर के दर्शन किए हैं और न ही यह अभिकथित किया है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि श्री माता वैष्णो देवी के दर्शन के लिए आने वाली भोली-भाली जनता को असुविधा का सामना करना पड़ रहा है । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना भी आवश्यक है कि याची ने इस बात का प्रकटीकरण कहीं पर भी नहीं किया है कि किसी सामान्य जन ने, जो समाज के वंचित वर्ग से संबंधित है, याची से रिट याचिका में उठाई गई शिकायतों के बाबत याची से कभी भी संपर्क स्थापित किया । अतः इस याचिका में आवश्यक विवरणों का अभाव है और इस याचिका को समाज के किसी वंचित वर्ग, जो अपनी गरीबी और अशिक्षा के कारण इस न्यायालय की शरण में आने में असमर्थ है, की ओर से फाइल नहीं किया गया है । इसलिए, हमको यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याची को जनहित में इस याचिका को फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है ।

[1] (2015) 13 एस. सी. सी. 702.

(III) जनहित के तत्व का अंतर्वलित होना –

रिट याचिका की सघन संवीक्षा से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह रिट याचिका जनहित के किसी भी तत्व का प्रकटीकरण नहीं करती या इसके माध्यम से ऐसा कोई विवाद्यक नहीं उठाया गया है जो सामान्य जनता से संबंधित हो । यहां पर यह उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा कि प्रत्येक दर्शनार्थी को, जो श्री माता वैष्णो देवी के दर्शन के लिए मंदिर जाता है, दर्शन करने का अधिकार है । गर्भ गृह में आरती के समय अट्टका आरती के संबंध में केवल 30 प्रतिशत दर्शनार्थियों की सीमा तक संदाय का उपबंध किया गया है । श्राइन बोर्ड ने अपनी 43वीं बैठक में इस बात का उल्लेख किया है कि ऐसे बहुत से लोग थे जो आरती में सम्मिलित होना चाहते थे और उनको प्रवेश के समय गर्भ गृह में अपनी उपस्थिति को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ अनेकों बार श्राइन बोर्ड के कर्मचारियों को अनुचित तरीके से रुकावट के लिए कीमत प्रेरित करनी पड़ती थी । अतः, यह निर्णय लिया गया कि क, ख और ग श्रेणियों के दर्शनार्थियों के लिए नियमित रूप से एक न्यूनतम बाधा का शुल्क विहित कर दिया जाए । हमारी सुविचारित राय में श्राइन बोर्ड द्वारा लिया गया पूर्वोक्त विनिश्चय एक सुविवेचित विनिश्चय है और बृहत्तर लोक हित में और तीर्थ यात्रियों के हित में है और हम इस विनिश्चय में मध्यक्षेप करने का कोई आधार नहीं पाते । इसलिए इस रिट याचिका में जनहित का कोई भी तत्व अन्तर्वलित नहीं है ।

(IV) **विलम्ब और चूकें** –

यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है कि आक्षेपित आदेश वर्ष 2008 में पारित किए गए थे और रिट याचिका आठ वर्षों के पश्चात् फाइल की गई है और इसलिए यह याचिका स्पष्टतः विलम्ब और चूकों से ग्रसित है । यह अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है कि विलम्ब और चूकों के सिद्धांत जनहित मुकदमेबाजी पर भी लागू होते हैं । (देखें – **बाम्बे डाइंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड** बनाम **बाम्बे इनवायरनमेंट एक्शन ग्रुप**[1] वाला मामला) । अतः यह रिट याचिका विलम्ब और चूकों से ग्रसित है जिनके लिए याची द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है ।

---

[1] (2006) 3 एस. सी. सी. 434 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1489.

(V) क्या रिट याचिका इस न्यायालय द्वारा विरचित नियमों के पुष्टिकरण में है –

इस न्यायालय द्वारा विरचित नियम अपेक्षा करते हैं कि याची एक शपथपत्र फाइल करेगा और उक्त शपथपत्र में वह सभी आवश्यक तथ्यों का स्पष्टतः उल्लेख यह साबित करने के प्रयोजनार्थ करेगा कि याचिका जनहित में फाइल की गई है और उसको सामान्य रूप से जनहित याचिका समझा जाए और उस शपथपत्र के साथ उसमें किए गए तथ्यात्मक प्रकथनों के समर्थन में समस्त आवश्यक और तात्विक दस्तावेज संलग्न किए जाएंगे जिससे कि उसकी अन्तर्वस्तुओं की सत्यता को प्रथमदृष्ट्या स्थापित किया जा सके । शपथपत्र का प्रारूप भी विहित किया गया है । इस शपथपत्र के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि याची द्वारा शपथपूर्वक फाइल किया गया शपथपत्र प्रथमदृष्ट्या विहित प्रारूप पर आधारित प्रतीत होता है और याची ने रिट याचिका फाइल किए जाने के पूर्व प्रत्यर्थी को एक प्रत्यावेदन भी भेजा है । इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि रिट याचिका नियमों की अपेक्षा के पुष्टिकरण में फाइल की गई है ।

10. हम ऊपर किए गए विश्लेषण को दृष्टि में रखते हुए इस जनहित मुकदमेबाजी में कोई गुणागुण नहीं पाते । सामान्यतः, हमको इस जनहित मुकदमेबाजी को लागत सहित खारिज कर देना चाहिए था । तथापि, हम मामले के विलक्षण तथ्यों और अधिवक्ता की प्रतिष्ठा को देखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वह एक युवा अधिवक्ता है, स्वयं को ऐसा करने से विरत करते हैं । परिणामतः, यह रिट याचिका विफल होती है और तद्द्वारा खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

अवि.

कुमारी पूजा उर्फ पूजा कुमारी

बनाम

नन्दन कुमार उर्फ मुन्ना

तारीख 6 फरवरी, 2017

न्यायमूर्ति एच. सी. मिश्रा और न्यायमूर्ति (डा.) एस. एन. पाठक

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 12(1)(ख) और 13(1) – विवाह-विच्छेद के लिए वाद – पति द्वारा यह आधार लिया जाना कि पत्नी विवाह के पूर्व से किसी अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी – पत्नी द्वारा लिखित कथन फाइल करने के पश्चात् मामले में पैरवी छोड़ देना – साक्षियों द्वारा यह साक्ष्य देना कि पत्नी ने विवाह के 6 मास और 13 दिन के पश्चात् पुत्री को जन्म दिया था – पत्नी द्वारा साक्षियों की प्रतिपरीक्षा न की जानी – पति को विवाह-विच्छेद की डिक्री ठीक ही मंजूर की गई है ।

अपीलार्थी, विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, गढ़वा द्वारा 1995 के एम. एम. मामला सं. 37 में तारीख 12 फरवरी, 2016 को पारित उस एकपक्षीय निर्णय और डिक्री से व्यथित हुई है, जिसके द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया गया है । अपीलार्थी द्वारा निर्णय और डिक्री को अपास्त करने का अनुरोध करते हुए वर्तमान अपील फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – निचले न्यायालय में अर्जीदार-प्रत्यर्थी की ओर से 4 साक्षियों की परीक्षा की गई और उन्होंने इस तथ्य को साबित किया कि विवाह के 6 मास और 13 दिन के भीतर पत्नी ने एक पुत्री को जन्म दिया था । निचले न्यायालय में उस दस्तावेज को जो सभी विवाह उपहारों को वापस करने और नातेदारी को समाप्त करने के लिए तैयार किया गया था, प्रदर्श-1 के रूप में साबित किया गया है । निचले न्यायालय ने साक्ष्य के आधार पर यह पाया कि अपीलार्थी-पत्नी विवाह के समय अर्जीदार-प्रत्यर्थी के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी और तद्नुसार हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) के अधीन विवाह विघटित करते हुए विवाह विच्छेद की डिक्री के लिए वाद डिक्री किया गया था । दोनों पक्षकारों के

विद्वान् काउंसेलों की दलीलों को सुनने और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करने के पश्चात् न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि सूचना जारी किए जाने पर अपीलार्थी निचले न्यायालय में उपस्थित हुई थी और उसने अपना लिखित कथन भी फाइल किया था । जब मामला मध्यस्थता के लिए भेजा गया था तो वह मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित नहीं हुई थी । इसके पश्चात् वह निचले न्यायालय के समक्ष भी किसी कारण से जिसे वह ही बेहतर जानती है, उपस्थित नहीं हुई और इसलिए मामले में एकपक्षीय रूप से कार्यवाही की गई और इसलिए उसने अर्जीदार-प्रत्यर्थी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों की प्रतिपरीक्षा नहीं की । निचले न्यायालय के समक्ष पेश किए गए इस पुख्ता साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए कि अपीलार्थी के विवाह के 6 मास और 13 दिन के पश्चात् उसने एक पुत्री को जन्म दिया था, निचले न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि पत्नी विवाह के समय अर्जीदार-पति के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी और तद्नुसार हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) के अधीन विवाह के विघटन के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह ठीक ही विघटित किया गया है । उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, गढ़वा द्वारा 2015 के एम. एम. मामला सं. 37 में तारीख 12 फरवरी, 2016 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है । (पैरा 5, 8 और 9)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की प्रथम अपील सं. 46.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री श्यो कुमार सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से श्री शैलेन्द्र कुमार तिवारी

निर्णय

अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना गया ।

2. अपीलार्थी, विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, गढ़वा द्वारा 1995 के एम. एम. मामला सं. 37 में तारीख 12 फरवरी, 2016 को पारित उस एकपक्षीय निर्णय और डिक्री से व्यथित हुई है, जिसके द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया गया है ।

3. प्रत्यर्थी-पति ने यह अभिकथित करते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) और 13(1) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए वाद फाइल किया था कि पक्षकारों के बीच विवाह तारीख 20 जून, 2014 को संपन्न हुआ था । उसे तारीख 21 जून, 2014 को यह पता चला कि उसकी पत्नी का उदर (पेट) बहुत बढ़ा हुआ है और उसके द्वारा पूछे जाने पर पत्नी ने यह कहा कि ऐसा बीमारी होने के कारण है । इसके पश्चात् वह अपने पिता के घर वापस चली गई जहां अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 2 जनवरी, 2015 को एक पुत्री को जन्म दिया । अर्जीदार-प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि अर्जीदार-प्रत्यर्थी की पत्नी विवाह के समय अर्जीदार-प्रत्यर्थी के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी और अर्जीदार-प्रत्यर्थी से विवाह की बातचीत के समय यह तथ्य छुपाया गया था । बच्चे के जन्म के पश्चात् पक्षकारों के बीच यह आपसी सहमति हुई कि विवाह के समय दिए गए सभी उपहार लौटा दिए जाएं और नातेदारी समाप्त करने के लिए एक दस्तावेज तैयार किया गया था और इसके पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी अपने सभी सामानों के साथ अपने माता पिता के मकान पर वापस चली गई थी । अर्जीदार-प्रत्यर्थी ने मुख्यतया इस प्रकथन के साथ कि उसकी पत्नी विवाह के समय किसी अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी जिसके बारे में अर्जीदार-प्रत्यर्थी को जानकारी नहीं थी, निचले न्यायालय के समक्ष विवाह के विघटन के लिए वाद फाइल किया था ।

4. सूचना जारी किए जाने पर प्रत्यर्थी-अपीलार्थी निचले न्यायालय में उपस्थित हुई और उसने अपना लिखित कथन भी फाइल किया । आक्षेपित निर्णय से यह उपदर्शित होता है कि पक्षकारों के बीच मामला मध्यस्थता के लिए भेजा गया था तथापि, मामले में समझौता नहीं हो सका क्योंकि प्रत्यर्थी-अपीलार्थी मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित नहीं हुई । आक्षेपित निर्णय से यह भी उपदर्शित होता है कि इसके पश्चात् प्रत्यर्थी-अपीलार्थी निचले न्यायालय के समक्ष भी उपस्थित नहीं हुई जिसके कारण मामले में एकपक्षीय कार्यवाही की गई और उसने अर्जीदार-पति की ओर से परीक्षा किए गए किसी भी साक्षी की प्रतिपरीक्षा नहीं की और न ही उसने अपना कोई साक्ष्य पेश किया ।

5. निचले न्यायालय में अर्जीदार-प्रत्यर्थी की ओर से 4 साक्षियों की परीक्षा की गई और उन्होंने इस तथ्य को साबित किया कि विवाह के 6 मास और 13 दिन के भीतर पत्नी ने एक पुत्री को जन्म दिया था । निचले न्यायालय में उस दस्तावेज को जो सभी विवाह उपहारों को वापस करने

और नातेदारी को समाप्त करने के लिए तैयार किया गया था, प्रदर्श-1 के रूप में साबित किया गया है । निचले न्यायालय ने साक्ष्य के आधार पर यह पाया कि अपीलार्थी-पत्नी विवाह के समय अर्जीदार-प्रत्यर्थी के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी और तद्नुसार हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) के अधीन विवाह विघटित करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए वाद डिक्री किया गया था ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निचले न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री पूर्णतया अवैध है क्योंकि अपीलार्थी को निचले न्यायालय ने अर्जीदार-प्रत्यर्थी के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने के लिए और अपना साक्ष्य पेश करने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था । तद्नुसार विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री विधितः कायम नहीं रखी जा सकती ।

7. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने अनुरोध का विरोध करते हुए यह दलील दी कि निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए, निचले न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता नहीं है ।

8. दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों को सुनने और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करने के पश्चात् हमें यह प्रतीत होता है कि सूचना जारी किए जाने पर अपीलार्थी निचले न्यायालय में उपस्थित हुई थी और उसने अपना लिखित कथन भी फाइल किया था । जब मामला मध्यस्थता के लिए भेजा गया था तो वह मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित नहीं हुई थी । इसके पश्चात् वह निचले न्यायालय के समक्ष भी किसी कारण से जिसे वह ही बेहतर जानती है, उपस्थित नहीं हुई और इसलिए मामले में एकपक्षीय रूप से कार्यवाही की गई और इसलिए उसने अर्जीदार-प्रत्यर्थी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों की प्रतिपरीक्षा नहीं की । निचले न्यायालय के समक्ष पेश किए गए इस पुख्ता साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए कि अपीलार्थी के विवाह के 6 मास और 13 दिन के पश्चात् उसने एक पुत्री को जन्म दिया था, निचले न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि पत्नी विवाह के समय अर्जीदार-पति के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी और तद्नुसार हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12(1) के अधीन विवाह के विघटन के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह ठीक ही विघटित किया गया है ।

9. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए हमें विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, गढ़वा द्वारा 2015 के एम. एम. मामला सं. 37 में तारीख 12 फरवरी, 2016 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है ।

10. अपील में कोई बल नहीं है और तद्नुसार यह ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2018) 1 सि. नि. प. 560 **झारखंड**

संजय कुमार जालान

बनाम

झारखंड राज्य और अन्य

तारीख 18 मार्च, 2017

न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 और 19(1) तथा 19(2)(छ) [सपठित पी. डी. एस. डीलरों के लिए डोर स्टेप डिलीवरी स्कीम] – निविदा द्वारा संविदाकारों की नियुक्ति – डीलरशिप हेतु निविदा आवेदन के साथ शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए निबंधन और शर्तें – चुनौती – संविधान के अनुच्छेद 19(1) के अधीन गारंटीकृत स्वतंत्रता भी युक्तियुक्त निबंधनों और शर्तों के अध्यधीन है – अतः निविदा हेतु ऐसी शर्तें और निबंधन अधिकथित करना अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता – न्यायालय द्वारा ऐसे किसी मामले में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

एन. आई. टी. (उपाबंध-6) का खंड 2 राज्य के हितबद्ध बोली लगाने वालों से यह शपथपत्र देने की अपेक्षा करता है कि उसे किसी विधिक न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध नहीं किया गया है और वह सरकारी खाद्य प्रदाय से संबंधित किसी दांडिक मामले में अभियुक्त नहीं है तथा उसे किसी काली सूची में नहीं डाला गया है । याची ने उक्त निबंधनों और शर्तों को आक्षेपित करते हुए वर्तमान रिट याचिका फाइल की है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि याची की दलील विधिक रूप से स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । उसने समय पूर्व यह दलील दी है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट राज्य सरकार के अपूर्ति विभाग के कर्मचारी विपणन अधिकारी द्वारा रजिस्ट्रीकृत कराई गई है । याची किसी भी परिस्थिति में यह नहीं कह सकता कि उसे जानबूझकर अन्तर्वलित किया गया है क्योंकि 7 लोगों के नाम लिखाए गए हैं और 7 ऐसे लोग भी अभियुक्त हैं जिनके नाम नहीं दिए गए हैं । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में सम्यक् रूप से अन्वेषण किया गया है और परिणामस्वरूप आरोप पत्र भी प्रस्तुत किए गए हैं । एन. आई. टी. के निबंधन और शर्तें नियोजक के अधिकार क्षेत्र के अंदर हैं । ऐसी कोई अतर्कसंगतता उपदर्शित नहीं की गई है जिससे कि इस न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता हो । अतः याची उस घोषणा के लिए अनुरोध नहीं कर सकता जिसका कि उसने अनुरोध किया है । न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित तथ्यों की पृष्ठभूमि में पक्षकारों की दलीलों पर विचार किया है । याची ने एन. आई. टी. के निबंधनों और शर्तों में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया है, जबकि न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र अत्यंत परिसीमित है । नियोजक इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह उन निबंधनों और शर्तों को अधिकथित करे जिनका कि ऐसे पात्र और सद्भाविक निविदाकर्ताओं को जिनकी कि विश्वसनीयता ठीक है, कार्य आबंटित करने के आत्यंतिक उद्देश्य के साथ युक्तियुक्त संबंध हो । वर्तमान मामले के तथ्यों से यह भी उपदर्शित होता है कि याची की संलिप्तता राज्य सरकार के आपूर्ति विभाग के एक अधिकारी अर्थात् विपणन अधिकारी द्वारा बताई गई है । अभिकथनों की सत्यता की जांच सिविल कार्यवाहियों में जांच की विषयवस्तु नहीं हो सकती । अन्यथा भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) के अधीन गारंटीकृत स्वतंत्रता युक्तियुक्त निबंधनों के अध्यधीन है, जैसाकि भारत के संविधान के 19(2) से (6) के अधीन उपबंधित है । यह न्यायालय इन सभी तथ्यों और विधिक सिद्धांतों पर विचार करने के पश्चात् इस बात से सहमत नहीं है कि आक्षेपाधीन एन. आई. टी. में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों में हस्तक्षेप करना न्यायोचित होगा । (पैरा 5, 6 और 7)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 1379.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से मैसर्स इंद्रजीत सिन्हा

प्रत्यर्थियों की ओर से महाधिवक्ता की ओर से जे. सी.

न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह – याची और राज्य के काउंसेलों को सुना गया । याची पी. डी. एस. डीलरों के लिए अनाज संबंधी मदों के परिदान के प्रयोजन के लिए बनाई गई डोर स्टेप डिलिवरी स्कीम के अधीन संविदाकार की नियुक्ति के लिए उपायुक्त, धनबाद द्वारा तारीख 21 फरवरी, 2017 को जारी अल्प-अवधि निविदा सूचना के निबंधनों और शर्तों के खंड 2 से व्यथित हुआ है ।

2. एन. आई. टी. (उपाबंध-6) का खंड 2 राज्य के हितबद्ध बोली लगाने वालों से यह शपथपत्र देने की अपेक्षा करता है कि उसे किसी विधिक न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध नहीं किया गया है और वह सरकारी खाद्य प्रदाय से संबंधित किसी दांडिक मामले में अभियुक्त नहीं है तथा उसे किसी काली सूची में नहीं डाला गया है ।

3. स्वीकृततः याची 2016 के झरिया पुलिस थाना मामला सं. 223 में एक अभियुक्त है जिसमें उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 406/420 और आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन आरोप पत्रित भी किया गया है । उपाबंध-2 प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है । याची को वर्तमान प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ द्वारा 2016 के अग्रिम जमानत आवेदन सं. 4360 में तारीख 26 अक्तूबर, 2016 के आदेश द्वारा अग्रिम जमानत मंजूर की गई है ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि मिथ्या अभिकथनों के साथ मात्र किसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का फाइल करना और उसमें नामित किया जाना तथा न्यायिक व्यवस्था द्वारा अन्वेषण के दौरान उपलब्ध सामग्री की जांच करने के पश्चात् आरोप विरचित करने से पूर्व आरोप पत्र फाइल करना निविदा प्रक्रिया में भाग लेने से वर्जन के रूप में नहीं माना जाना चाहिए । यदि निविदा मूल्यांकन समिति द्वारा अन्वेषण अभिकर्ता द्वारा उपलब्ध और संगृहीत सामग्री की जांच किए बिना ऐसा मत लिया जाता है तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन कारबार या व्यवसाय को करने के लिए अधिकार के प्रयोग के मामले में ऋजु प्रक्रिया से इनकार करने के बराबर है । अतः याची ने यह घोषणा चाही है कि एन. आई. टी. के खंड 2 को असंवैधानिक घोषित किया जाए । याची ने यह भी निदेश जारी करने का अनुरोध किया है कि प्रतियोगिता बोली के मूल्यांकन के अध्यधीन उसकी बोली को स्वीकार किया जाए ।

5. प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि याची की

दलील विधिक रूप से स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । उसने समय पूर्व यह दलील दी है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट राज्य सरकार के अपूर्ति विभाग के कर्मचारी विपणन अधिकारी द्वारा रजिस्ट्रीकृत कराई गई है । याची किसी भी परिस्थिति में यह नहीं कह सकता कि उसे जानबूझकर अन्तर्वलित किया गया है क्योंकि 7 लोगों के नाम लिखाए गए हैं और 7 ऐसे लोग भी अभियुक्त हैं जिनके नाम नहीं दिए गए हैं । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में सम्यक् रूप से अन्वेषण किया गया है और परिणामस्वरूप आरोप पत्र भी प्रस्तुत किए गए हैं । एन. आई. टी. के निबंधन और शर्तें नियोजक के अधिकार क्षेत्र के अंदर हैं । ऐसी कोई अतर्कसंगतता उपदर्शित नहीं की गई है जिससे कि इस न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता हो । अतः याची उस घोषणा के लिए अनुरोध नहीं कर सकता जिसका कि उसने अनुरोध किया है ।

6. मैंने ऊपर उल्लिखित तथ्यों की पृष्ठभूमि में पक्षकारों की दलीलों पर विचार किया है । याची ने एन. आई. टी. के निबंधनों और शर्तों में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया है, जबकि न्यायिक पुनर्विलोकन के क्षेत्र अत्यंत परिसीमित है । नियोजक इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह उन निबंधनों और शर्तों को अधिकथित करे जिनका कि ऐसे पात्र और सद्भाविक निविदाकर्ताओं को जिनकी कि विश्वसनीयता ठीक है, कार्य आंबटित करने के आत्यंतिक उद्देश्य के साथ युक्तियुक्त संबंध हो । वर्तमान मामले के तथ्यों से यह भी उपदर्शित होता है कि याची की संलिप्तता राज्य सरकार के आपूर्ति विभाग के एक अधिकारी अर्थात् विपणन अधिकारी द्वारा बताई गई है । अभिकथनों की सत्यता की जांच सिविल कार्यवाहियों में जांच की विषयवस्तु नहीं हो सकती । अन्यथा भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) के अधीन गारंटीकृत स्वतंत्रता युक्तियुक्त निबंधनों के अध्यधीन है, जैसाकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(2) से (6) के अधीन उपबंधित है ।

7. यह न्यायालय इन सभी तथ्यों और विधिक सिद्धांतों पर विचार करने के पश्चात् इस बात से सहमत नहीं है कि आक्षेपाधीन एन. आई. टी. में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों में हस्तक्षेप करना न्यायोचित होगा । अत: रिट याचिका द्वारा दी गई चुनौती विफल होती है । तद्नुसार रिट याचिका खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी, सतर्कता ब्यूरो

बनाम

संजीव चतुर्वेदी

तारीख 23 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति संजीव सचदेवा

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22) – धारा 24(1) परन्तुक 2(च) – सूचना के प्रकटीकरण से छूट – सतर्कता ब्यूरो की भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना को समाविष्ट करने वाली रिपोर्ट – इस तथ्य के बाद भी कि सतर्कता ब्यूरो को अधिनियम की अनुसूची में वर्णित संगठन होने के कारण इस सूचना को प्रदान करने से छूट प्राप्त है, फिर भी वह इस सूचना को प्रदान करने का दायी है ।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 – धारा 24 – सूचना के प्रकटीकरण से छूट – इस धारा का प्रयोग सूचना अधिकार अनुरोधों को अंधाधुंध रूप से दबाने के लिए नहीं कर सकते – लोक प्राधिकारी का कर्तव्य है कि वे सूचनाएं उपलब्ध कराने के लिए अधिनियम के अंतर्गत अपेक्षित इंतजाम करें यदि सूचनाएं भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित हैं, सिवाय सुरक्षा और सतर्कता से संबंधित मामलों के ।

संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी ने तारीख 5 दिसम्बर, 2015 को सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत सूचना प्राप्त करने के लिए एक आवेदन पर्यावरण और वन मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी के समक्ष फाइल की । पर्यावरण और वन मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने उपरोक्त आवेदन के संबंध में तारीख 7 जनवरी, 2016 के प्रत्युत्तर द्वारा समस्त पत्र व्यवहार और फाइल टिप्पणों की प्रतियां, प्रत्यर्थी के प्रत्यावेदनों को अपवर्जित करते हुए, उपलब्ध करा दीं । प्रत्यर्थी ने उपरोक्त दस्तावेजों की प्राप्ति के पश्चात् तारीख 18 जनवरी, 2016 को सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट को भी उपलब्ध कराए जाने का अनुरोध किया । ये अनुरोध इस आधार पर किया गया कि फाइल टिप्पण/पत्र व्यवहार में प्रत्यर्थी के विषय में एक सतर्कता ब्यूरो रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है । उक्त रिपोर्ट का सारांश फाइल टिप्पण में प्रत्युत्तपादित किया गया है ।

प्रतिवादी द्वारा रिपोर्ट की प्रति की ईप्सा यह दलील देते हुए दी गई कि सतर्कता ब्यूरो रिपोर्ट में समाविष्ट सूचना केवल प्रत्यर्थी से संबंधित है और किसी अन्य के विषय में नहीं है और इसका संबंध राष्ट्रीय सुरक्षा या विदेशी संबंधों से नहीं है । पर्यावरण और वन मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने सतर्कता ब्यूरो की उक्त रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि वह रिपोर्ट सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24 के निबंधनों के अनुसार प्रकटीकरण से छूट प्राप्त है । प्रत्यर्थी ने सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराए जाने से इनकार किए जाने के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सूचना आयोग के समक्ष अधिनियम की धारा 24 के अधीन आवेदन फाइल किया । याची और साथ ही पर्यावरण और वन मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 24 के अधीन फाइल किए गए आवेदन का विरोध इस आधार पर किया कि सूचना प्रकटीकरण से छूट प्राप्त है चूंकि चाही गई सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट एक सतर्कता रिपोर्ट है, जो कि अधिनियम की अनुसूची में वर्णित संगठन है और अधिनियम की धारा 24 के निबंधनों के अनुसार छूट प्राप्त है । केन्द्रीय सूचना आयोग ने तारीख 21 अप्रैल, 2016 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए, प्रत्यर्थी के अधिनियम की धारा 24 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को मंजूर कर लिया । उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – धारा 24(1) अन्य बातों के साथ अधिनियम को केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित सतर्कता और सुरक्षा संगठनों, जिनको द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किया गया है, के संबंध में अप्रयोज्य कर देती है और केन्द्र सरकार के उक्त संगठनों द्वारा प्रकट की गई किसी भी सूचना को प्रकटीकरण से विवर्जित कर देती है । तथापि, इस परन्तुक द्वारा आच्छादित सूचना के संबंध में विवर्जन खंड के विरुद्ध एक अपवाद अधिकथित किया गया है । यह परन्तुक अनुध्यात करता है कि यदि सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के संबंध में है तो उसको इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं किया जाएगा । इस परन्तुक द्वारा केन्द्र सरकार के सतर्कता और सुरक्षा संगठनों द्वारा प्रकट की गई सूचना के मध्य एक विभेद किया गया है । अपवर्जन खंड के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवाद केवल सूचना के संबंध में है, न कि सतर्कता और सुरक्षा संगठनों के संबंध में । इस परन्तुक को सरल शब्दों में पढ़े जाने पर दर्शित होता है कि अपवर्जन किसी

भी सूचना के संबंध में लागू होगा । पद "किसी भी सूचना" की परिधि के अन्तर्गत सभी प्रकार की सूचना सम्मिलित होगी । यह परन्तुक तब लागू हो जाता है जब सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित होती है । यह परन्तुक सापेक्ष नहीं है और उस सूचना के संबंध में सशर्त है जो सतर्कता और सुरक्षा संगठनों को छूट प्रदान करती है । यदि छूट प्राप्त सतर्कता और सुरक्षा संगठनों द्वारा प्रस्तुत की गई ईप्सित सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित होती है, तो वह अपवर्जन खंड से छूट प्राप्त होगी । परन्तुक "परन्तु भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगा" को पूर्ववर्ती खंड "या कोई सूचना जिसको उस सरकार के ऐसे किसी संगठन द्वारा प्रस्तुत किया गया है" के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए । जब दोनों को [धारा 24(1) और परन्तुक को] एक साथ पढ़ा जाता है, तो जो एकमात्र निष्कर्ष निकल सकता है, यह है कि यदि ईप्सित सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित होती है, तो वह अपवर्जन खंड से इस तथ्य के बाद भी छूट प्राप्त होगी कि सूचना सतर्कता और सुरक्षा संगठनों को छूट प्रदान किए जाने से संबंधित है या नहीं या सतर्कता ब्यूरो के किसी अधिकारी से संबंधित है या नहीं । मुख्य सूचना आयुक्त ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी को भ्रष्ट राजनितिज्ञों और लोक सेवकों द्वारा विधि का अनिर्बंधित रूप से क्रियान्वयन किए जाने के प्रतिशोधस्वरूप अत्यधिक परेशानियों के अन्तर्गत रखा गया था । मुख्य सूचना आयुक्त ने आगे यह निष्कर्ष भी निकाला कि सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट के सारांश से, जैसा कि सतर्कता ब्यूरो द्वारा अपीलार्थी के सूचना अधिकार अनुरोध के प्रत्युत्तर में प्रस्तुत किया गया है, दर्शित होता है कि इसके प्रकटीकरण से सतर्कता ब्यूरो के सुरक्षा और सतर्कता के केन्द्रीय क्रियाकलापों को कोई नुकसान पहुंचने वाला नहीं था । सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट पर्यावरण और वन मंत्रालय के कब्जे के अन्तर्गत धारा 2(च) के अनुसार एक सूचना है, और यह सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित है । यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी द्वारा ईप्सित सूचना अपवर्जन खंड से छूट प्राप्त कोटि के अन्तर्गत आती हैं और प्रदान किए जाने योग्य है । याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा आदर्श शर्मा वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया, यह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता । उस मामले में न्यायालय गृह मंत्रालय के एक चिकित्सक से संबंधित सूचना, जिसकी ईप्सा की गई थी, पर विचार कर

रहा था । ईप्सित सूचना चिकित्सक के भारत से अंतिम प्रस्थान की तारीख, गंतव्य स्थान, एयरलाइन और पासपोर्ट संख्या के संबंध में थी । आवेदन को गृह मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी द्वारा सतर्कता ब्यूरो को अन्तरित कर दिया गया था । सतर्कता ब्यूरो ने अधिनियम की धारा 24 के अधीन छूट का दावा किया । ईप्सित सूचना सतर्कता ब्यूरो के आब्रजन विभाग से संबंधित थी । चूंकि सूचना भ्रष्टाचार या मानवाधिकार अतिक्रमण के आरोपों से संबंधित नहीं थी, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि उक्त सूचना अधिनियम की धारा 24 के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवादों की परिधि के अन्तर्गत नहीं आती । इन परिस्थितियों में, सूचना की आपूर्ति के लिए निर्देशित करने वाले मुख्य सूचना आयुक्त के निर्देश को अभिखंडित कर दिया गया । (पैरा 31, 34, 35 और 36)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 204 डी. एल. टी. 231 : **भारत संघ और अन्य** बनाम **आदर्श शर्मा** ;	11
[2013]	(2013) 11 एस. सी. सी. 451 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 30 : **रोहिताश कुमार** बनाम **ओम प्रकाश शर्मा** ;	16
[2012]	ए. आई. आर. 2012 मद्रास 84 : **पुलिस अधीक्षक, केन्द्रीय रेंज, सतर्कता और भ्रष्टाचार निरोधी निदेशालय का कार्यालय** बनाम **वी. आर. कार्तिकेयन** ;	33
[1985]	(1985) 1 एस. सी. सी. 591 = ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 582 : **एस. सुन्दरम् पिल्लई और अन्य** बनाम **वी. आर. पट्टाबिरामन और अन्य ।**	16

आरम्भिक रिट अधिकारिता : 2016 की रिट याचिका सिविल सं. 5521.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री आर. वी. सिन्हा और उनके साथ आर. एन. सिंह और ए. एस. सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई उपस्थित नहीं

न्यायमूर्ति संजीव सचदेवा – सतर्कता ब्यूरो के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने यह याचिका 2005 के सूचना के अधिकार अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) के अधीन केन्द्रीय सूचना आयोग द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 2016 को पारित आदेश को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है ।

2. केन्द्रीय सूचना आयोग ने तारीख 21 अप्रैल, 2016 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए अभिनिर्धारित किया कि सतर्कता ब्यूरो की प्रत्यर्थी से संबंधित रिपोर्ट भ्रष्टाचार और मानवाधिकारों के अतिक्रमण के आरोपों से संबंधित सूचना है और इसलिए इसकी प्रति प्रत्यर्थी को उपलब्ध कराई जानी चाहिए । आयोग ने सतर्कता ब्यूरो और पर्यावरण, वन और मौसम परिवर्तन मंत्रालय (जिसको इसमें इसके पश्चात् "एम. ओ. ई. एफ." कहकर निर्दिष्ट किया गया है) को प्रत्यर्थी से संबंधित सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट की सत्यापित प्रति उपलब्ध कराए जाने के लिए निर्देशित किया, जैसा कि ईप्सा प्रत्यर्थी द्वारा अपने तारीख 5 दिसम्बर, 2015 के आवेदन द्वारा की गई है ।

3. मुख्य सूचना आयुक्त द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकालते हुए, निर्देश जारी किए गए :–

(क) यह तथ्यात्मक रूप से साबित हो गया है कि अपीलार्थी को भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और लोक सेवकों द्वारा उसके द्वारा विधि के नियम का अप्रतिबंधित रूप से क्रियान्वयन किए जाने के प्रतिशोधस्वरूप अत्यधिक कठिनाई दी गई थी ।

(ख) सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट का सारांश, जैसा कि सतर्कता ब्यूरो द्वारा इस मामले में अपीलार्थी के सूचना अधिकार अनुरोध के प्रत्युत्तर में प्रस्तुत किया गया है, से दर्शित होता है कि इसके प्रकटीकरण से सतर्कता ब्यूरो की सुरक्षा या सतर्कता संबंधी केन्द्रीय क्रियाकलापों को कोई नुकसान नहीं पहुंच सकता ।

(ग) सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24 के अधीन छूट प्राप्त लोक प्राधिकारियों को उनके द्वारा धारित सम्पूर्ण सूचना को दबाने या उसको तैयार किए जाने और अन्य लोकप्राधिकारियों को प्रदान किए जाने से रोकने के लिए प्राधिकृत नहीं करती, किन्तु प्रकटीकरण से उस सूचना का अपवर्जन इस सीमा तक सीमित है जो

छूट प्राप्त संगठनों के 'सुरक्षा' और 'सतर्कता' पहलू के केन्द्रीय क्रियाकलापों से संबंधित हैं ।

(घ) अपीलार्थी द्वारा ईप्सित सतर्कता की ब्यूरो रिपोर्ट कोई ऐसी सूचना नहीं है जो सूचना के अधिकार अधिनियम द्वारा प्रकटीकरण की परिधि से अपवर्जित है ।

(ङ) सतर्कता की ब्यूरो रिपोर्ट पर्यावरण और वन मामलों के मंत्रालय द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(च) के अधीन धारित सूचना है और सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24 के द्वितीय परन्तुक के अनुसार भ्रष्टाचार या मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित भी एक सूचना है और इसलिए, उसकी सत्यापित प्रति अपीलार्थी को प्रदान की जानी चाहिए ।

(च) धारा 24 के अधीन लोक प्राधिकारी इस धारा का प्रयोग समस्त सूचना अधिकार अनुरोधों को अंधाधुंध रूप से दबाने के लिए नहीं कर सकते । सतर्कता ब्यूरो का यह कानूनी कर्तव्य है कि वे सूचनाएं उपलब्ध कराने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम के स्वैच्छिक प्रकटीकरण खंडों या अन्य उपबंधों के अधीन समस्त इंतजाम करें, यदि वे सूचनाएं भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित हैं या भ्रष्टाचार या मानवाधिकार अतिक्रमण के निवारण में लाभदायक है, सिवाय 'सुरक्षा' और 'सतर्कता' से संबंधित मामलों के ।

4. प्रत्यर्थी ने तारीख 5 दिसम्बर, 2015 को सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत सूचना प्राप्त करने के लिए एक आवेदन फाइल किया । आवेदक ने निम्नलिखित सूचनाओं की ईप्सा की :–

"(i) कृपया मुझे श्री संजीव चतुर्वेदी, भारतीय वन सेवा, उप सचिव, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के उत्तराखंड से हरियाणा के अन्तर्राज्यीय काडर अन्तरण के संबंध में (मेरे स्वयं के प्रत्यावेदनों को अपवर्जित करते हुए) वन, पर्यावरण और मौसम परिवर्तन मंत्रालय, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, मंत्रिमण्डल सचिवालय और मंत्रिमण्डल नियुक्ति समिति के मध्य समस्त प्रकार के फाइल टिप्पणों/दस्तावेजों, पत्र व्यवहार/समस्त प्रकार की रिपोर्टों की सत्यापित प्रतियां उपलब्ध कराई जाएं ।

(ii) कृपया मुझे श्री संजीव चतुर्वेदी, भारतीय वन सेवा, उप सचिव, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली से बृहत्तर

दिल्ली राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली की अन्तर्राज्यीय काडर प्रतिनियुक्ति के संबंध में (मेरे स्वयं के प्रत्यावेदनों को अपवर्जित करते हुए) वन, पर्यावरण और मौसम परिवर्तन मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, मंत्रिमण्डल सचिवालय और मंत्रिमण्डल नियुक्ति समिति के मध्य समस्त प्रकार के फाइल टिप्पणों/दस्तावेजों, पत्र व्यवहार/समस्त प्रकार की रिपोर्टों की सत्यापित प्रतियां उपलब्ध कराई जाएं ।"

5. पर्यावरण और वन मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने उपरोक्त आवेदन के संबंध में तारीख 7 जनवरी, 2016 के प्रत्युत्तर द्वारा समस्त पत्र व्यवहार और फाइल टिप्पणों की प्रतियां, प्रत्यर्थी के प्रत्यावेदनों को अपवर्जित करते हुए, उपलब्ध करा दीं ।

6. प्रत्यर्थी ने तारीख 18 जनवरी, 2016 को उपरोक्त दस्तावेजों की प्राप्ति के पश्चात् सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट को भी उपलब्ध कराए जाने का अनुरोध किया । ये अनुरोध इस आधार पर किया गया था कि फाइल टिप्पण/पत्र व्यवहार में प्रत्यर्थी के विषय में एक सतर्कता ब्यूरो रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है । उक्त रिपोर्ट का सारांश फाइल टिप्पण में प्रत्युत्तपादित किया गया है ।

7. प्रत्यर्थी द्वारा रिपोर्ट की प्रति की ईप्सा यह दलील देते हुए दी गई कि सतर्कता ब्यूरो रिपोर्ट में समाविष्ट सूचना केवल प्रत्यर्थी से संबंधित है और किसी अन्य के विषय में नहीं है और इसका संबंध राष्ट्रीय सुरक्षा या विदेशी संबंधों से नहीं है ।

8. पर्यावरण और वन मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने सतर्कता ब्यूरो की उक्त रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि वह रिपोर्ट सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 24 के निबंधनों के अनुसार प्रकटीकरण से छूट प्राप्त हैं ।

9. प्रत्यर्थी ने सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराए जाने से इनकार किए जाने के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सूचना आयोग के समक्ष अधिनियम की धारा 24 के अधीन आवेदन फाइल किया ।

10. याची और साथ ही पर्यावरण और वन मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 24 के अधीन फाइल किए गए आवेदन का विरोध इस आधार पर किया कि सूचना प्रकटीकरण से छूट प्राप्त है चूंकि चाही गई सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट एक सतर्कता

रिपोर्ट है, जो कि अधिनियम की अनुसूची में वर्णित संगठन है और अधिनियम की धारा 24 के निबंधनों के अनुसार छूट प्राप्त है ।

11. केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने **भारत संघ और अन्य** बनाम **आदर्श शर्मा**[1] वाले मामले में समकक्ष न्यायपीठ द्वारा तारीख 9 सितम्बर, 2013 को पारित किए गए निर्णय का भी अवलंब यह दलील देने के प्रयोजनार्थ लिया कि छूट वाला अधिकथित अपवाद तब लागू होगा यदि भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण का अभिकथन सतर्कता ब्यूरो के संबंध में किया गया हो ।

12. केन्द्रीय सूचना आयोग ने तारीख 21 अप्रैल, 2016 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए, प्रत्यर्थी के अधिनियम की धारा 24 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को मंजूर कर लिया ।

13. याची अर्थात् सतर्कता ब्यूरो के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी ने उक्त विनिश्चय से व्यथित होकर वर्तमान याचिका यह दलील देते हुए फाइल की है कि केन्द्रीय सूचना आयोग द्वारा जारी आक्षेपित आदेश अधिनियम की धारा 8(1)(ण) के विपरीत हैं और आक्षेपित आदेश अधिनियम 8(1)(ज) की द्वितीय अनुसूची, जिसमें न केवल सतर्कता ब्यूरो को छूट प्रदान की गई बल्कि सतर्कता ब्यूरो द्वारा भारत सरकार को उपलब्ध कराई गई सूचना को विनिर्दिष्ट रूप से छूट प्रदान की गई है, को दृष्टि में रखते हुए बिना अधिकारिता के हैं । याची द्वारा यह दलील दी गई कि ईप्सित सूचना अधिनियम की धारा 24 के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवाद के अन्तर्गत नहीं आती चूंकि न तो यह सतर्कता ब्यूरो के भीतर भ्रष्टाचार के अभिकथन से संबंधित है और न ही मानवाधिकार अतिक्रमण से । उन्होंने दलील दी कि प्रत्यर्थी द्वारा उठाया गया विवाद्यक एक सामान्य सेवा मामला है ।

14. याची की तरफ से यह दलील दी गई कि धारा 24, जो यह विनिर्दिष्ट करती है कि "भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना को इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं किया जाएगा" के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवाद केवल तभी लागू होगा यदि भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथन सतर्कता ब्यूरो के भीतर से संबंधित हों या सतर्कता ब्यूरो के किसी अधिकारी से संबंधित हों । उन्होंने आगे दलील दी कि केवल यदि भ्रष्टाचार और मानवाधिकार

---

[1] (2013) 204 डी. एल. टी. 231.

अतिक्रमण के अभिकथन विनिर्दिष्ट रूप से सतर्कता ब्यूरो के अधिकारियों से संबंधित हों, तभी परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवाद लागू होंगे । उन्होंने आगे दलील दी कि अपवाद तब लागू नहीं होगा यदि भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथन सतर्कता ब्यूरो के अलावा किसी अन्य संगठन, जिसके संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत की गई हो, से संबंधित हों ।

15. उन्होंने आगे दलील दी कि सतर्कता ब्यूरो के अधिकारियों द्वारा भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथनों के संबंध में कोई अभिकथन नहीं किए गए हैं और अभिकथन उस विभाग के संबंध में है जहां प्रत्यर्थी सेवारत था । चूंकि याची द्वारा प्रस्तुत की गई सतर्कता ब्यूरो रिपोर्ट उस संगठन के संबंध में प्रस्तुत की गई थी जहां प्रत्यर्थी सेवारत था, वह रिपोर्ट अधिनियम की धारा 24 के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवादों की परिधि के अन्तर्गत नहीं आती ।

16. याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा **आदर्श शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित किए गए विनिश्चय का अवलंब लिया गया । इसके अलावा उन्होंने उच्चतम न्यायालय द्वारा **एस. सुन्दरम् पिल्लई और अन्य** बनाम **वी. आर. पट्टाबिरामन और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का भी अवलंब यह दलील देते हुए लिया कि किसी परन्तुक का निर्वचन किसी सामान्य नियम, जो उपबंधित किया गया है, की भांति नहीं किया जा सकता और न ही इसका निर्वचन ऐसी रीति में किया जा सकता है जो अधिनियमिति को शून्य करने वाला हो या किसी ऐसे अधिकार को, जिसको प्रदत्त किया गया हो, सम्पूर्णता में छीनने वाला हो । इसके अलावा, किसी न्यायालय को यह शक्ति नहीं है कि वह विधान के किसी भी निर्वचन को संयोजन कर सके या उसको घटा सके । **रोहिताश कुमार** बनाम **ओम प्रकाश शर्मा**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया गया ।

17. प्रत्यर्थी ने अपने प्रत्युत्तर में दलील दी कि प्रत्यर्थी, जो भारतीय वन सेवा के 2002 बैंच का अधिकारी है, को पहले हरियाणा काडर आबंटित किया गया था जिसको बाद में अगस्त, 2015 में अत्यधिक कठिनाइयों के कारण परिवर्तित करके उत्तराखंड काडर कर दिया गया । उन्होंने दलील दी कि सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट का सारांश, जिसकी प्रति

---

[1] (1985) 1 एस. सी. सी. 591 = ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 582.

[2] (2013) 11 एस. सी. सी. 451 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 30.

की ईप्सा प्रत्यर्थी द्वारा की गई है और जिसका प्रकटीकरण प्रत्यर्थी को किया गया, में अभिकथित किया गया है कि श्री संजीव चतुर्वेदी की इस दलील में सत्यतता है कि हरियाणा सरकार द्वारा अभिकथित रूप से उसका उत्पीड़न किया गया । हरियाणा से उत्तराखंड काडर को परिवर्तन के उसके अनुरोध पर गुणागुण पर विचार किया गया । उसने दलील दी कि रिपोर्ट का सारांश इस बात का स्पष्ट साक्ष्य है कि मामले में भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के विवाद्यक अन्तर्वलित हैं और इसलिए यह मामला अधिनियम की धारा 24 के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवाद द्वारा आच्छादित है ।

18. उसने आगे दलील दी कि सतर्कता ब्यूरो को सूचना के प्रकटीकरण से छूट प्राप्त नहीं है यदि सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित है । उसने दलील दी कि वह भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ रहा है और भ्रष्टाचार के मामलों को उठाता रहा है । उसके द्वारा उठाए गए भ्रष्टाचार के मामलों के कारण ही राज्य सरकार द्वारा उसके विरुद्ध अनेक आदेश पारित किए गए । किन्तु राज्य सरकार द्वारा पारित विभिन्न आदेशों को अभिखंडित करते हुए प्रत्यर्थी के पक्ष में चार राष्ट्रपति आदेश भी जारी हुए ।

19. उसने दलील दी कि प्रत्यर्थी की प्रशंसा की गई और उसके कार्यनिर्वहन और सत्यनिष्ठा के बाबत उसको पुरस्कार भी दिए गए । प्रत्यर्थी ने हरियाणा काडर में अपनी कार्य अवधि के दौरान अभिकथित रूप से झज्जर और हिसार जिलों में करोड़ों रुपए के पौधारोपण घोटाले और निजी भूमि पर सरकारी धन द्वारा हर्बल पार्क के निर्माण में भ्रष्टाचार, सरस्वती वन्यजीव अभ्यारण्य में अवैध रूप से पेड़ काटे जाने और शिकार के मामले और प्लाईवुड इकाइयों के लाइसेंस प्रदान किए जाने में भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया ।

20. यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी का उत्पीड़न, उसका निलम्बन, उस पर बृहत्तर रूप से शास्ति के अधिरोपण, उसको विभागीय आरोप पत्र, उसके विरुद्ध पुलिस और सतर्कता मामले और मात्र पांच वर्ष के कार्यकाल में बारह स्थानांतरणों के माध्यम से किया गया ।

21. यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी ने हरियाणा से उत्तराखंड काडर में परिवर्तन के लिए अक्तूबर, 2012 में अत्यधिक कठिनाइयों और अपने जीवन को खतरे के आधार पर आवेदन किया था । पर्यावरण और वन

मंत्रालय के सचिव ने सतर्कता ब्यूरो से प्रत्यर्थी के जीवन को खतरे का आंकलन किए जाने के लिए अगस्त, 2014 में रिपोर्ट मांगी । सतर्कता ब्यूरो ने प्रत्यर्थी को अत्यधिक कठिनाइयां दिए जाने और उसका उत्पीड़न किए जाने की पुष्टि की ।

22. प्रत्यर्थी द्वारा यह दलील दी गई कि धारा 24 का परन्तुक भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के समस्त मामलों को आच्छादित करता है और यह धारा अधिनियम की सूची में निर्दिष्ट संगठनों के भीतर भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के मामलों तक सीमित नहीं है ।

23. यह दलील दी गई कि अधिनियम की प्रस्तावना, जो अधिकथित करती है कि यह अधिनियम प्रत्येक लोक प्राधिकारी की कार्यशैली में पारदर्शिता और जवाबदेही को प्रोन्नत और भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने और सरकारों और उनके कृत्यकारियों को जनता के प्रति जवाबदेह बनाए जाने के लिए बनाया गया है, के निबंधनों के अनुसार यदि भ्रष्टाचार से संबंधित सूचना को छिपाया जाता है, तो अधिनियम की प्रस्तावना में दर्शित उद्देश्य पूर्णतया नकार दिए जाएंगे और वे पराजित हो जाएंगे ।

24. यह दलील दी गई कि केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और संगठनों ने भ्रष्टाचार के मामलों में अधिनियम की धारा 24 के अधीन अधिकथित छूटों का दावा किए बिना सतर्कता ब्यूरो द्वारा उनको प्रदान की गई सूचनाओं का प्रकटीकरण किया है ।

25. वह प्रश्न जो हमारे विचारणार्थ उद्भूत होता है, यह है कि क्या धारा 24 के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवाद केवल तभी लागू होंगे यदि भ्रष्टाचार या मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथन स्वयमेव सतर्कता ब्यूरो के संबंध में है या सतर्कता ब्यूरो के किसी अधिकारी के संबंध में ?

26. अधिनियम की धारा 24(1) निम्नलिखित है :–

> "24. **अधिनियम का कतिपय संगठनों को लागू न होना** – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई बात, केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित आसूचना और सुरक्षा संगठनों को, जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट है या ऐसे संगठनों द्वारा उस सरकार को दी गई किसी सूचना को लागू नहीं होगा :
>
> परन्तु भ्रष्टाचार और मानवाधिकार के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगी :

परन्तु यह और कि यदि मांगी गई सूचना मानवाधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित है तो सूचना केन्द्रीय सूचना आयोग के अनुमोदन के पश्चात् ही दी जाएगी और धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी सूचना अनुरोध की प्राप्ति के पैंतालीस दिन के भीतर दी जाएगी ।

(2) * * *।"

27. धारा 24(1) अन्य बातों के साथ अधिनियम को केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित सतर्कता और सुरक्षा संगठनों, जिनको द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किया गया है, के संबंध में अप्रयोज्य कर देती है और केन्द्र सरकार के उक्त संगठनों द्वारा प्रकट की गई किसी भी सूचना को प्रकटीकरण से विवर्जित कर देती है । तथापि, इस परन्तुक द्वारा आच्छादित सूचना के संबंध में विवर्जन खंड के विरुद्ध एक अपवाद अधिकथित किया गया है । यह परन्तुक अनुध्यात करता है कि यदि सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के संबंध में है तो उसको इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं किया जाएगा ।

28. इस परन्तुक द्वारा केन्द्र सरकार के सतर्कता और सुरक्षा संगठनों द्वारा प्रकट की गई सूचना के मध्य एक विभेद किया गया है । अपवर्जन खंड के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवाद केवल सूचना के संबंध में है, न कि सतर्कता और सुरक्षा संगठनों के संबंध में ।

29. इस परन्तुक को सरल शब्दों में पढ़े जाने पर दर्शित होता है कि अपवर्जन किसी भी सूचना के संबंध में लागू होगा । पद "किसी भी सूचना" की परिधि के अन्तर्गत सभी प्रकार की सूचना सम्मिलित होगी । यह परन्तुक तब लागू हो जाता है जब सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित होती है । यह परन्तुक सापेक्ष नहीं है और उस सूचना के संबंध में सशर्त है जो सतर्कता और सुरक्षा संगठनों को छूट प्रदान करती है । यदि छूट प्राप्त सतर्कता और सुरक्षा संगठनों द्वारा प्रस्तुत की गई ईप्सित सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित होती है, तो वह अपवर्जन खंड से छूट प्राप्त होगी ।

30. परन्तुक "परन्तु भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगी" को पूर्ववर्ती खंड "या कोई सूचना जिसको उस सरकार के ऐसे किसी संगठन द्वारा प्रस्तुत किया गया है" के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए ।

31. जब दोनों को [धारा 24(1) और परन्तुक का] एक साथ पढ़ा जाता है, तो जो एकमात्र निष्कर्ष निकल सकता है, यह है कि यदि ईप्सित सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित होती है, तो वह अपवर्जन खंड से इस तथ्य के बाद भी छूट प्राप्त होगी कि सूचना सतर्कता और सुरक्षा संगठनों को छूट प्रदान किए जाने से संबंधित है या नहीं या सतर्कता ब्यूरो के किसी अधिकारी से संबंधित है या नहीं ।

32. **सुन्दरम् पिल्लई और अन्य** (उपरोक्त) और **रोहिताश कुमार** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए निर्णय स्पष्टतः वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते । वह निर्वचन जो ऊपर किया गया है, अधिनियमिति को शून्य नहीं करता या किसी अधिकार को सम्पूर्णता में वापस नहीं लेता । वास्तव में, अधिनियम द्वारा प्रदत्त सूचना को अभिप्राप्त करने का अधिकार अधिनियम की धारा 24 में समाविष्ट अपवर्जन द्वारा वापस ले लिया गया है । परन्तुक, अपवर्जन खंड का एक अपवाद अधिकथित करता है और सूचना को पुनः अधिनियम की परिधि के अन्तर्गत ले आता है । यह परन्तुक पूर्णतः अधिनियम के आत्यांतिक उद्देश्य के सामंजस्य में है ।

33. **पुलिस अधीक्षक, केन्द्रीय रेंज, सतर्कता और भ्रष्टाचार निरोधी निदेशालय का कार्यालय** बनाम **वी. आर. कार्तिकेयन**[1] वाले मामले में, मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिनियम की अधिनियमिति की आवश्यकता और उद्देश्य को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्टतः वर्णित किया है :–

> "8. भारत ने लोकतांत्रिक स्वरूप की सरकार को अंगीकृत किया गया है और कोई भी लोकतांत्रिक सरकार जवाबदेही के बिना नहीं चल सकती और जवाबदेही का आधारी पहलू यह है कि लोगों को सरकार के कार्यों के बारे में सूचना प्राप्त हो । यह केवल तब हो सकता है जब लोगों को इस बात की जानकारी हो कि सरकार कैसे कार्य कर रही है, वे उस भूमिका के बारे में भी पता लगा सकते हैं जिसको लोकतंत्र में उनको समनुदेशित किया है और लोकतंत्र को वास्तव में, प्रभावी और भागीदारी से परिपूर्ण लोकतंत्र बना सकते हैं । सूचना का अधिकार किसी भी लोकतंत्र के लिए आधार होता है । एक जागरुक नागरिक वर्ग किसी भी लोकतांत्रिक समाज और शासन तंत्र के लिए पूर्वेक्षित होता है । किसी भी सभ्य समाज में जीवन की

[1] ए. आई. आर. 2012 मद्रास 84.

गुणवत्ता शासनतंत्र और उससे संबंधित पहलुओं के बारे में सूचना के विनिमय की गुणवत्ता पर निर्भर होती है । अब इस बात को व्यापक रूप से मान्यता प्रदान की जा चुकी है कि सरकार के कार्यों के बारे में पारदर्शिता और लोगों की पहुंच लोकतंत्र का अत्यंत महत्वपूर्ण संघटक है । प्रदान किए जाने योग्य सूचना के प्रकटीकरण से एक उत्तम प्रणाली विकसित होगी और यह लोक हित में होगा कि लोक प्राधिकारी लोक संविक्षा की प्रक्रिया, जिसके परिणामस्वरूप एक उत्तम प्रणाली विकसित होगी, को पारदर्शी बनाएं । सूचना के प्रकटीकरण से लोक प्राधिकारी के कार्यों की सत्यनिष्ठा और कार्यकुशलता के साथ समझौता हो सकता है । निरन्तर रूप से ज्ञान के आधार पर बढ़ते हुए समाज में सूचना और सूचना तक पहुंच से ही संसाधनों तक पहुंच और लाभ और शक्ति के वितरण का मार्ग प्रशस्त होता है । किसी भी अन्य संघटक के मुकाबले सूचना का किसी भागीदारी से परिपूर्ण लोकतंत्र में अत्यधिक महत्व है ।

9. सूचना का अधिकार अधिनियम अधिकारों पर आधारित अधिनियमिति है जो मूल अधिकारों की रक्षा करने वाली किसी अन्य अधिनियमिति के समान है । जैसा कि अधिनियम के कथन और उद्देश्य से स्पष्ट होता है, लोकतंत्र की अपेक्षा है कि नागरिक वर्ग सूचित हो और सूचना का पारदर्शीकरण हो । इस अधिनियम में मूलतः दो बातें हैं, प्रथम यह कि किसी भी नागरिक का ऐसी सूचना की ईप्सा करने का अधिकार, जिसका वह अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत हकदार है और इस प्रकार की सूचना को प्रदान करने का सूचना अधिकारियों का अनुरूप कर्तव्य और द्वितीय यह कि यह अधिनियम सरकार के कार्यों में पारदर्शिता लाएगा ।

10. सूचना के अधिकार के प्रयोग को विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट किए जाने की आवश्यकता नहीं है चूंकि सूचना प्राप्त करने के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में मान्यताप्राप्त की गई है । इस पर संक्षेप में बात करते हैं, अधिनियम के अधीन प्रदान की गई सूचना पारदर्शिता और जवाबदेही को प्रोन्नत करती है जिनमें से शासनतंत्र में दोनों ही भ्रष्टाचार को घटाने में और कार्यकुशलता को बढ़ाने में सहायक होते हैं, और लोकतंत्र में लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित करती है । सूचना के अधिकार की आवश्यकता लोगों की भागीदारी को सुनिश्चित करती है, जवाबदेही और पारदर्शिता के सिद्धांत को

सुनिश्चित करती है, अधिकारियों को प्रदत्त वैवेकिक शक्तियों को सीमित करती है, लोक स्वातंत्र्य, सरकार की योजनाओं के प्रभावी और उचित क्रियान्वयन को संरक्षण प्रदान करती है और प्रचार माध्यमों को प्रभावी बनाती है ।

11. यद्यपि भारत के संविधान में सूचना के अधिकार को प्रत्याभूत करने वाला कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं है, फिर भी इसको न्यायालयों द्वारा अनेक मामलों में मान्यताप्रदान की गई है, जैसा कि अनुच्छेद 19(1)(क) में अन्तर्निहित है, जो सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य प्रत्याभूत करता है और संविधान का अनुच्छेद 21, जो सभी नागरिकों को सम्यक् प्रक्रिया के अनुसार जीवन का अधिकार प्रत्याभूत करता है । इस अधिनियमिति की पृष्ठभूमि पूर्ण नहीं होगी यदि माननीय उच्चतम न्यायालय के योगदान का उल्लेख न किया जाए । माननीय उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** राजनारायण (ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 865) वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) का निर्वचन अत्यधिक व्यापक भाव में किया जिस कारणवश अनेक अधिकार इसकी व्यापक परिधि के अन्तर्गत आ गए । इसी प्रकार का एक अधिकार है, सूचना का अधिकार । उक्त निर्णय में यह मताभिव्यक्ति की गई कि 'जानने का अधिकार, जो वाक् स्वातंत्र्य की संकल्पना से उत्पन्न हुआ है, यद्यपि आत्यांतिक नहीं है फिर भी एक ऐसा कारक है जिसको ध्यान में रखा जाना चाहिए जब संव्यवहारों के गुप्त रखे जाने का दावा किया जा रहा हो और जो किसी भी प्रकार से लोक संवीक्षा पर प्रभाव न डालने वाले हों ।' माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे मताभिव्यक्ति की कि 'इस देश के लोगों को प्रत्येक लोक कार्य के बाबत जानने का अधिकार है, उस प्रत्येक कार्य के बारे में जो उनके लोक कृत्यकारियों द्वारा सार्वजनिक रूप से किया जा रहा हो । वे प्रत्येक लोक संव्यवहार के विवरणों के बारे में सम्पूर्णता में जानने के हकदार हैं ।' एक पारदर्शी सरकार की संकल्पना जानने के अधिकार का प्रत्यक्ष परिणाम है जो अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन प्रत्याभूत वाक् और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के अधिकार में अन्तर्निहित प्रतीत होता है जैसी कि मताभिव्यक्ति उच्चतम न्यायालय द्वारा एस. पी. गुप्ता **बनाम** भारत संघ (ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149) वाले मामले में की गई है ।

12. सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार **बनाम** क्रिकेट एसोशिएशन आफ बंगाल (1995) 2 एस. सी. सी. 161 = ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1236 वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने सूचना के अधिकार के प्रकाश में वाक् और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर विचार करते हुए मताभिव्यक्ति की कि 'वाक् और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य किसी लोकतांत्रिक राजतंत्र के लिए मुख्य आधार हैं और उससे अविभाज्य हैं' । उच्चतम न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति भी की कि 'देश के नागरिकों के वाक् स्वांतत्र्य को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि देश के नागरिकों को समस्त लोक विवाद्यकों पर मतों के अनेकत्व और विचारों की क्रमबध्यता का लाभ प्राप्त हो और सफल लोकतंत्र जागरूक नागरिकों पर निर्भर होता है ।'

13. सूचना का अधिकार अधिनियम को अधिनियमित किए जाने के लिए गर्व करने का अधिकार निश्चित रूप से न्यायपालिका को जाता है जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित किए गए कतिपय विनिश्चयों में की गई मताभिव्यक्ति में देखा जा सकता है । भारत संघ **बनाम** एसोशिएसन फार डेमोक्रेटिक रिफार्म्स (ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2112) वाले मामले में दिया गया निर्णय सूचना के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने के लिए जाना जाता है और उक्त निर्णय ने ही आधारशिला स्थापित की जिसके ऊपर 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम की अवसंरचना निर्मित की गई । पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज **बनाम** भारत संघ (2004) 1 सी. टी. सी. 241 (एस. सी.) = (2004) 2 एस. सी. सी. 476 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1442 वाले मामले में जो मताभिव्यक्ति की गई, वह निम्नलिखित है :–

> 'जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में समाविष्ट है, सूचना का अधिकार वाक् स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति का एक पहलू है । अतः सूचना का अधिकार निर्विवाद रूप से एक मूल अधिकार है ।'

भारत संघ **बनाम** एसोशिएसन फार डेमोक्रेटिक रिफार्म्स (2002) 5 एस. सी. सी. 294 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2112 वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई कि – किसी लोकतंत्र में सूचना प्राप्त करने के अधिकार को सम्पूर्ण विश्व में मान्यता प्रदान की गई है

और यह एक नैसर्गिक अधिकार है, जो लोकतंत्र की संकल्पना से प्रवाहित होता है ।

14. इंदिरा जयसिंह **बनाम** रजिस्ट्रार जनरल, सुप्रीम कोर्ट आफ इंडिया (2003) 5 एस. सी. सी. 494 वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यही विचार व्यक्त किए जो निम्नलिखित हैं –

> 'यह निस्संदेह रूप से सत्य है कि किसी लोकतांत्रिक ढांचे में उचित कार्यकरण के लिए, विशेष रूप से ऐसे मामलों में जहां लोक अभिलेखों का मामला अन्तर्वलित है, नागरिकों को सूचना का मुक्त प्रवाह आवश्यक होता है । याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा जिन विनिश्चयों का अवलंब लिया गया, वे यह अभिनिर्धारित नहीं करते कि सूचना का अधिकार एक आत्यांतिक अधिकार है । ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहां इस प्रकार की सूचना प्रदान किए जाने की आवश्यकता नहीं होती । 2002 के सूचना का अधिकार अधिनियम भी, जिसको निर्दिष्ट किया गया, निश्चित रूप से यह नहीं कहता कि किसी भी प्रयोजन के लिए किसी भी तरीके से एकत्रित की गई सूचना का प्रकटीकरण जनता को किया जाएगा ।'

34. मुख्य सूचना आयुक्त ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी को भ्रष्ट राजनितिज्ञों और लोक सेवकों द्वारा उसके द्वारा विधि का अनिर्बंधित रूप से क्रियान्वयन किए जाने के प्रतिशोधस्वरूप अत्यधिक परेशानियों के अन्तर्गत रखा गया था । मुख्य सूचना आयुक्त ने आगे यह निष्कर्ष भी निकाला कि सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट के सारांश से, जैसा कि सतर्कता ब्यूरो द्वारा अपीलार्थी के सूचना अधिकार अनुरोध के प्रत्युत्तर में प्रस्तुत किया गया है, दर्शित होता है कि इसके प्रकटीकरण से सतर्कता ब्यूरो के सुरक्षा और सतर्कता के केन्द्रीय क्रियाकलापों को कोई नुकसान पहुंचने वाला नहीं था । सतर्कता ब्यूरो की रिपोर्ट पर्यावरण और वन मंत्रालय के कब्जे के अन्तर्गत धारा 2(च) के अनुसार एक सूचना है, और यह सूचना भ्रष्टाचार और मानवाधिकार अतिक्रमण से संबंधित है ।

35. यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी द्वारा ईप्सित सूचना अपवर्जन खंड से छूट प्राप्त कोटि के अन्तर्गत आती है और प्रदान किए जाने योग्य है ।

36. याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा **आदर्श शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया, यह निर्णय वर्तमान

मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता । उस मामले में न्यायालय गृह मंत्रालय के एक चिकित्सक से संबंधित सूचना, जिसकी ईप्सा की गई थी, पर विचार कर रहा था । ईप्सित सूचना चिकित्सक के भारत से अंतिम प्रस्थान की तारीख, गंतव्य स्थान, एयरलाइन और पासपोर्ट संख्या के संबंध में थी । आवेदन को गृह मंत्रालय के केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी द्वारा सतर्कता ब्यूरो को अन्तरित कर दिया गया था । सतर्कता ब्यूरो ने अधिनियम की धारा 24 के अधीन छूट का दावा किया । ईप्सित सूचना सतर्कता ब्यूरो के आब्रजन विभाग से संबंधित थी । चूंकि सूचना भ्रष्टाचार या मानवाधिकार अतिक्रमण के आरोपों से संबंधित नहीं थी, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि उक्त सूचना अधिनियम की धारा 24 के परन्तुक द्वारा अधिकथित अपवादों की परिधि के अन्तर्गत नहीं आती । इन परिस्थितियों में, सूचना की आपूर्ति के लिए निर्देशित करने वाले मुख्य सूचना आयुक्त के निर्देश को अभिखंडित कर दिया गया ।

37. उपरोक्त चर्चा को दृष्टि में रखते हुए, और प्रत्येक दृष्टिकोण से विचारोपरान्त मुख्य सूचना आयुक्त द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 2016 के आक्षेपित आदेश द्वारा व्यक्त किए गए विचार में कोई शिथिलता नहीं पाई जाती । तद्नुसार यह आदेश खारिज किया जाता है । मामले की लागत की बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा ।

याचिका खारिज की गई ।

अवि.

निर्भय सिंह

बनाम

वित्त आयुक्त (राजस्व) पंजाब और अन्य

तारीख़ 11 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति राकेश कुमार जैन

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 25 – सहदायिकी संपदा – संपदा के स्वामी द्वारा याची के हक में रजिस्ट्रीकृत विल का निष्पादन – याची द्वारा संपदा स्वामी की हत्या – सेशन न्यायालय द्वारा याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि – उच्च न्यायालय द्वारा याची की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग 1) में परिवर्तित करके 10 वर्ष के कारावास से दंडादिष्ट किया जाना – कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की संपत्ति के लिए उत्तराधिकार प्राप्त नहीं कर सकता जिसका जीवन ऐसे व्यक्ति द्वारा समाप्त कर दिया गया हो – यह सिद्धांत साम्या, न्याय और बेहतर अन्तःकरण पर आधारित है जिससे कि ऐसा व्यक्ति स्वयं द्वारा हत्या किए गए व्यक्ति की विरासत से विवर्जित हो जाए ।

इस मामले में अन्तर्वलित प्रश्न यह है कि क्या कोई व्यक्ति, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति की हत्या की गई है, आहत व्यक्ति की संपत्ति को विरासत में प्राप्त कर सकता है भले ही उसकी दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304 (भाग-1) के अधीन की गई हो, न कि धारा 302 के अधीन और क्या वह हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 25 के लागू न होने का दावा कर सकता है ? इस मामले में विवाद मघर सिंह पुत्र करतार सिंह की संपदा के नामांतरण के संबंध में है । मघर सिंह की अविवाहित और संतान रहित मृत्यु हो गई थी । मघर सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसकी संपदा के संबंध में नामांतरण संख्या 3744 नैसर्गिक उत्तराधिकार के आधार पर प्राइवेट प्रत्यर्थियों के हक में मंजूर किया गया था । सहायक कलक्टर, द्वितीय श्रेणी द्वारा तारीख 18 जनवरी, 2008 को नामांतरण मंजूर करने संबंधी आदेश को याची द्वारा कलक्टर के समक्ष अपील में इस आधार पर आक्षेपित किया गया था कि प्राइवेट प्रत्यर्थी मृतक की संपत्ति को विरासत में प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि मृतक ने पहले ही

तारीख 10 फरवरी, 2003 की रजिस्ट्रीकृत विल के जरिए संपत्ति याची के हक में वसीयत कर दी थी । अतः कलक्टर द्वारा तारीख 5 नवंबर, 2008 को अपील स्वीकार कर ली गई थी और तारीख 18 जनवरी, 2008 का आदेश अपास्त कर दिया गया था और मामले को सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी को नए सिरे से आदेश पारित करने के लिए प्रतिप्रेषित किया गया था । प्रतिप्रेषण के पश्चात् सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी ने मघर सिंह की संपदा याची के हक में नामांतरित कर दी जो रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर किया गया था । उक्त कार्यवाहियों के दौरान सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी को यह सूचित किया गया कि याची के विरुद्ध तारीख 27 दिसंबर, 2007 को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन पुलिस थाना सदर, संगरूर में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट संख्या 169 रजिस्ट्रीकृत की गई है जो याची के विरुद्ध इस अभिकथन के साथ लंबित है कि याची ने वसीयतकर्ता मघर सिंह की हत्या कर दी थी अतः सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी ने अपने तारीख 29 जुलाई, 2009 के आदेश में यह संप्रेक्षण किया कि यदि याची दंड न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया जाता है तब उसके आदेश को उक्त आधार पर अपील में आक्षेपित किया जा सकता है । प्राइवेट प्रत्यर्थियों ने सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी के तारीख 29 जुलाई, 2009 के आदेश के विरुद्ध कानूनी अपील फाइल की । परिणामत: कलक्टर, संगरूर ने तारीख 29 जुलाई, 2009 को सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी के आदेश को उलट दिया और प्राइवेट प्रत्यर्थियों के हक में नामांतरण को पुनर्स्थापित कर दिया । इस बार याची ने कलक्टर के आदेश के विरुद्ध खंड आयुक्त, पटियाला के समक्ष अपील फाइल की । चूंकि हत्या के मामले में याची की दोषसिद्धि और दंड का विषय इस न्यायालय के समक्ष अपील में लंबित था इसलिए अपील को दांडिक अपील के परिणाम के अध्यधीन अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया और पक्षकारों को इस न्यायालय द्वारा दांडिक अपील को विनिश्चित करने तक वाद संपत्ति को अंतरित करने से रोक दिया गया । उस आदेश में यह भी संप्रेषण किया गया था कि जैसे ही दांडिक अपील विनिश्चित की जाती है, पक्षकार मामले की सुनवाई के लिए इस न्यायालय के समक्ष समावेदन कर सकते हैं । इस न्यायालय द्वारा 2009 की दांडिक अपील सं. डी.-925-डी. बी. जो निर्भय सिंह बनाम पंजाब राज्य के शीर्षक से थी, तारीख 11 अगस्त, 2015 के आदेश द्वारा विनिश्चित कर दी गई थी । न्यायालय द्वारा यह पाया गया था कि मघर सिंह की हत्या याची द्वारा मघर सिंह के वक्ष के बाईं ओर चाकू का प्रहार

करके की गई थी जो प्रहार घातक साबित हुआ था । तथापि, यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह प्रहार अचानक प्रकोपन के अधीन किया गया था और इसलिए याची की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि अपास्त करते हुए उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और उसके दंड को आजीवन कारावास से कम करके 10,000/- रुपए जुर्माने के साथ 10 वर्ष के कठोर कारावास में परिवर्तित कर दिया गया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष के अतिरिक्त कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया ।. प्रत्यर्थी सं. 5 ने दांडिक अपील में आदेश पारित होने के पश्चात् खंड आयुक्त, पटियाला के तारीख 27 सितंबर, 2012 के आदेश के विरुद्ध वित्त आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । वित्त आयुक्त ने दांडिक अपील में इस न्यायालय के विनिश्चय की प्रतीक्षा करने के लिए मामले को लंबित रखा । वित्त आयुक्त द्वारा उक्त पुनरीक्षण को तारीख 4 जुलाई, 2016 को इस आधार पर स्वीकार कर लिया गया कि चूंकि याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और वसीयतकर्ता मघर सिंह की हत्या करने के लिए 10 वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया है इसलिए नामांतरण रजिस्ट्रीकृत विल के बजाय नैसर्गिक उत्तराधिकार के आधार पर मंजूर किया जाएगा । अतः याची द्वारा वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – निस्संदेह अधिनियम की धारा 25 यह उपबंध करती है कि हत्या करने वाला कोई व्यक्ति उस व्यक्ति की संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं कर सकता जिसकी कि उसने हत्या की है और याची के पक्षकथनानुसार उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडादिष्ट नहीं किया गया है जो हत्या करने के लिए अभिप्रेत दंड है और उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) के अधीन दंडादिष्ट किया गया है जो कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-1 की परिधि के भीतर आता है । अतः याची अभी भी रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर मृतक मघर सिंह की संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त कर सकता है, तथापि, इस दलील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है क्योंकि याची ने स्वीकृततः वसीयतकर्ता की हत्या की थी । इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मघर सिंह (अब मृतक) की मृत्यु याची द्वारा मघर सिंह के वक्ष के बाईं ओर चाकू का प्रहार करने के कारण हुई थी,

जिसके कारण मघर सिंह की उक्त क्षति से मृत्यु हो गई । अतः यह एक ऐसा स्पष्ट मामला है कि याची ने ही अपने वसीयतकर्ता मघर सिंह की हत्या की थी और इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडादिष्ट किया गया है या उसे अचानक प्रकोपन का फायदा देते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) की परिधि के अन्तर्गत रखकर आजीवन कारावास के दंड को कम करके 10 वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया है । "हत्या करने वाला" पद को सामान्य भाषा में एक ऐसे व्यक्ति के रूप में समझा गया है जिसने हत्या की है या हत्या का दुष्प्रेरण किया है । अधिनियम की धारा 25 के अनुसार कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की संपत्ति के लिए उत्तराधिकार प्राप्त नहीं कर सकता जिसका जीवन ऐसे व्यक्ति द्वारा समाप्त कर दिया गया हो या दुष्प्रेरक के रूप में भागीदार रहा हो । यह सिद्धांत साम्या, न्याय और बेहतर अंतःकरण पर आधारित है जिससे कि ऐसा व्यक्ति स्वयं द्वारा हत्या किए गए व्यक्ति की विरासत से विवर्जित हो जाए । अतः उपर्युक्त संप्रेक्षणों को दृष्टिगत करते हुए आरंभ में उत्पन्न प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए सकारात्मक रूप में दिया जाता है कि याची अपने हक में रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर मृतक वसीयतकर्ता मघर सिंह की संपत्ति का उत्तराधिकारी नहीं होगा जिसकी कि उसने हत्या की थी भले ही वह अचानक प्रकोपन के अधीन की गई हो और भले ही उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के स्थान पर भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) के अधीन दंडादिष्ट किया गया हो । (पैरा 7, 9, 10 और 11)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1982]	ए. आई. आर. 1982 बम्बई 68 : **मिनोती** बनाम **सुशील मोहन सिंह मलिक और एक अन्य ;**	8
[1970]	ए. आई. आर. 1970 आन्ध्र प्रदेश 407 : **नन्नेपुनैनी सीतारमय्या** बनाम **नन्नेपुनैनी रामकृष्नैया ।**	8

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की सिविल रिट याचिका सं. 13447.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री संजीव गोयल

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति राकेश कुमार जैन – इस मामले में अन्तर्वलित प्रश्न यह है कि क्या कोई व्यक्ति, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति की हत्या की गई है हत व्यक्ति की संपत्ति को विरासत में प्राप्त कर सकता है भले ही उसकी दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304 (भाग-1) के अधीन की गई हो, न कि धारा 302 के अधीन और क्या वह हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 25 के लागू न होने का दावा कर सकता है ?

2. इस मामले में विवाद मघर सिंह पुत्र करतार सिंह की संपदा के नामांतरण के संबंध में है । मघर सिंह की अविवाहित और संतान रहित मृत्यु हो गई थी । मघर सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसकी संपदा के संबंध में नामांतरण संख्या 3744 नैसर्गिक उत्तराधिकार के आधार पर प्राइवेट प्रत्यर्थियों के हक में मंजूर किया गया था । सहायक कलक्टर, द्वितीय श्रेणी द्वारा तारीख 18 जनवरी, 2008 को पारित नामांतरण मंजूर करने संबंधी आदेश को याची द्वारा कलक्टर के समक्ष अपील में इस आधार पर आक्षेपित किया गया था कि प्राइवेट प्रत्यर्थी मृतक की संपत्ति को विरासत में प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि मृतक ने पहले ही तारीख 10 फरवरी, 2003 की रजिस्ट्रीकृत विल के जरिए संपत्ति याची के हक में वसीयत कर दी थी । अतः कलक्टर द्वारा तारीख 5 नवंबर, 2008 को अपील स्वीकार कर ली गई थी और तारीख 18 जनवरी, 2008 का आदेश अपास्त कर दिया गया था और मामले को सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी को नए सिरे से आदेश पारित करने के लिए प्रतिप्रेषित किया गया था । प्रतिप्रेषण के पश्चात् सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी ने मघर सिंह की संपदा याची के हक में नामांतरित कर दी जो रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर किया गया था । उक्त कार्यवाहियों के दौरान सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी को यह सूचित किया गया कि याची के विरुद्ध तारीख 27 दिसंबर, 2007 को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन पुलिस थाना सदर, संगरूर में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट संख्या 169 रजिस्ट्रीकृत की गई है जो याची के विरुद्ध इस अभिकथन के साथ लंबित है कि याची ने वसीयतकर्ता मघर सिंह की हत्या कर दी थी अतः सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी ने अपने तारीख 29 जुलाई, 2009 के आदेश में यह संप्रेक्षण किया कि यदि याची दंड न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया जाता है तब उसके आदेश को उक्त आधार पर अपील में आक्षेपित किया जा सकता है ।

3. प्राइवेट प्रत्यर्थियों ने सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी के तारीख 29 जुलाई, 2009 के आदेश के विरुद्ध कानूनी अपील फाइल की । उक्त अपील के लंबन के दौरान याची को वसीयतकर्ता मघर सिंह की हत्या करने के लिए सेशन न्यायाधीश, संगरूर द्वारा तारीख 8 सितंबर,, 2009 के निर्णय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दंडादिष्ट किया गया और तारीख 9 सितंबर, 2009 के आदेश द्वारा याची को आजीवन कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया, तथापि, जुर्माने का कोई आदेश नहीं किया गया । परिणामतः कलक्टर, संगरूर ने तारीख 29 जुलाई, 2009 को सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी के आदेश को उलट दिया और प्राइवेट प्रत्यर्थियों के हक में नामांतरण को पुनर्स्थापित कर दिया । इस बार याची ने कलक्टर के आदेश के विरुद्ध खंड आयुक्त, पटियाला के समक्ष अपील फाइल की । चूंकि हत्या के मामले में याची की दोषसिद्धि और दंड का विषय इस न्यायालय के समक्ष अपील में लंबित था इसलिए अपील को दांडिक अपील के परिणाम के अध्यधीन अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया और पक्षकारों को इस न्यायालय द्वारा दांडिक अपील को विनिश्चित करने तक वाद संपत्ति को अंतरित करने से रोक दिया गया । उस आदेश में यह भी संप्रेण किया गया था कि जैसे ही दांडिक अपील विनिश्चित की जाती है, पक्षकार मामले की सुनवाई के लिए इस न्यायालय के समक्ष समावेदन कर सकते हैं । इस न्यायालय द्वारा 2009 की दांडिक अपील सं. डी.-925-डी. बी. जो निर्भय सिंह बनाम पंजाब राज्य के शीर्षक से थी, तारीख 11 अगस्त, 2015 के आदेश द्वारा विनिश्चित कर दी गई थी । न्यायालय द्वारा यह पाया गया था कि मघर सिंह की हत्या याची द्वारा मघर सिंह के वक्ष के बाईं ओर चाकू का प्रहार करके की गई थी जो प्रहार घातक साबित हुआ था । तथापि, यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह प्रहार अचानक प्रकोपन के अधीन किया गया था और इसलिए याची की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि अपास्त करते हुए उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और उसके दंड को आजीवन कारावास से कम करके 10,000/- रुपए जुर्माने के साथ 10 वर्ष के कठोर कारावास में परिवर्तित कर दिया गया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष के अतिरिक्त कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया ।

4. प्रत्यर्थी सं. 5 ने दांडिक अपील में आदेश पारित होने के पश्चात् खंड आयुक्त, पटियाला के तारीख 27 सितंबर, 2012 के आदेश के विरुद्ध

वित्त आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । वित्त आयुक्त ने दांडिक अपील में इस न्यायालय के विनिश्चय की प्रतीक्षा करने के लिए मामले को लंबित रखा । वित्त आयुक्त द्वारा उक्त पुनरीक्षण को तारीख 4 जुलाई, 2016 को इस आधार पर स्वीकार कर लिया गया कि चूंकि याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और वसीयतकर्ता मघर सिंह की हत्या करने के लिए 10 वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया है इसलिए नामांतरण रजिस्ट्रीकृत विल की बजाय नैसर्गिक उत्तराधिकार के आधार पर मंजूर किया जाएगा । अतः याची द्वारा वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई है ।

5. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि पक्षकार हिन्दू हैं और वे हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों द्वारा विनियमित होते हैं । यह भी दलील दी गई है कि चूंकि याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट नहीं किया गया है जिसमें हत्या करने के लिए दंड का उपबंध है, इसलिए उसे उसके हक में निष्पादित रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर मृतक वसीयतकर्ता की संपत्ति को प्राप्त करने से विवर्जित नहीं किया जा सकता । अधिनियम की धारा 25 इस प्रकार है :–

> "25. हत्या करने वाला निरर्हित होगा – जो व्यक्ति हत्या करता है या हत्या करने का दुष्प्रेरण करता है वह आहत व्यक्ति की संपत्ति या ऐसी किसी अन्य संपत्ति को, जिसमें उत्तराधिकार को अग्रसर करने के लिए उसने हत्या की थी या हत्या करने का दुष्प्रेरण किया था, विरासत में पाने से निरर्हित होगा ।"

6. मैंने याची के विद्वान् काउंसेल को सुना और उनकी सहायता से उपलब्ध अभिलेख का परिशीलन किया ।

7. निस्संदेह रूप से अधिनियम की धारा 25 यह उपबंध करती है कि हत्या करने वाला कोई व्यक्ति उस व्यक्ति की संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं कर सकता जिसकी कि उसने हत्या की है और याची के पक्षकथनानुसार उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडादिष्ट नहीं किया गया है जो हत्या करने के लिए अभिप्रेत दंड है और उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) के अधीन दंडादिष्ट किया गया है जो कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-1 की परिधि के भीतर आता है । अतः याची अभी भी रजिस्ट्रीकृत विल के आधार

पर मृतक मघर सिंह की संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त कर सकता है, तथापि, इस दलील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है क्योंकि याची ने स्वीकृततः वसीयतकर्ता की हत्या की थी ।

8. इस संबंध में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा **नन्नेपुनैनी सीतारमय्या** बनाम **नन्नेपुनैनी रामकृष्नैया**[1] और **मिनोती** बनाम **सुशील मोहन सिंह मलिक और एक अन्य**[2] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का निर्देश किया जा सकता है जिनमें इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है :–

> "12. मेरे मतानुसार अधिनियम की धारा 25 के उपबंधों का निर्वचन करने के लिए सही तरीका वह है जो लोकनीति के महत्वपूर्ण सिद्धांत को निगमित करता हो और जो, साम्या और न्याय के सिद्धांतों, साम्या और बेहतर अन्तःकरण पर आधारित लोक नीति के सिद्धांत पर आधारित हो जिससे कि व्यक्ति स्वयं द्वारा किए गए अपराध का फायदा लेने के लिए समर्थ नहीं होगा । इस संदर्भ में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रयुक्त किए गए शब्द 'हत्या करता है या हत्या करने का दुष्प्रेरण करता' हैं न कि 'हत्या के किसी अपराध का दोषसिद्ध है' और न कि 'हत्या के किसी अपराध का दोषसिद्ध है या हत्या के अपराध के दुष्प्रेरण का दोषसिद्ध है' हैं । अतः यह स्पष्ट है कि विधान-मंडल ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 25 में 'हत्या' पद प्रयुक्त किया है जो कि एक तकनीकी अर्थ में नहीं है जैसा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 300 में परिभाषित है, तथापि, विस्तृत और लोकप्रिय अर्थ वह है जिसमें आपराधिक मानव वध या अवैध मानव हत्या भी सम्मिलित है । यह न तो संभव है और न ही वांछनीय है कि इस संबंध में कोई सामान्य नियम अधिकथित किया जाए, क्योंकि यह बात कतिपय सीमा तक प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित होगी ।"

9. इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मघर सिंह (अब मृतक) की मृत्यु याची द्वारा मघर सिंह के वक्ष के बाईं ओर चाकू का प्रहार करने के कारण हुई थी, जिसके कारण मघर सिंह की उक्त क्षति से मृत्यु हो गई । अतः यह एक ऐसा स्पष्ट मामला है कि याची ने ही अपने वसीयतकर्ता मघर सिंह की हत्या की थी और इस बात से कोई अंतर नहीं

---

[1] ए. आई. आर. 1970 आन्ध्र प्रदेश 407.

[2] ए. आई. आर. 1982 बम्बई 68.

पड़ता कि याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडादिष्ट किया गया है या उसे अचानक प्रकोपन का फायदा देते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) की परिधि के अन्तर्गत रखकर आजीवन कारावास के दंड को कम करके 10 वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया है ।

10. "हत्या करने वाला" पद को सामान्य भाषा में एक ऐसे व्यक्ति के रूप में समझा गया है जिसने हत्या की है या हत्या का दुष्प्रेरण किया है । अधिनियम की धारा 25 के अनुसार कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की संपत्ति के लिए उत्तराधिकार प्राप्त नहीं कर सकता जिसका जीवन ऐसे व्यक्ति द्वारा समाप्त कर दिया गया हो या दुष्प्रेरक के रूप में भागीदार रहा हो । यह सिद्धांत साम्या, न्याय और बेहतर अंतःकरण पर आधारित है जिससे कि ऐसा व्यक्ति स्वयं द्वारा हत्या किए गए व्यक्ति की विरासत से विवर्जित हो जाए ।

11. अतः उपर्युक्त संप्रेक्षणों को दृष्टिगत करते हुए आरंभ में उत्पन्न प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए सकारात्मक रूप में दिया जाता है कि याची अपने हक में रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर मृतक वसीयतकर्ता मघर सिंह की संपत्ति का उत्तराधिकारी नहीं होगा जिसकी कि उसने हत्या की थी भले ही वह अचानक प्रकोपन के अधीन की गई हो और भले ही उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के स्थान पर भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-1) के अधीन दंडादिष्ट किया गया हो ।

12. परिणामतः वर्तमान रिट याचिका एतद्द्वारा बल न होने के कारण खारिज की जाती है तथापि, खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

विनोद

बनाम

चन्दू लाल

तारीख़ 7 अप्रैल, 2017

न्यायमूर्ति ए. एस. चन्दूरकर

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 27 और 28 – संविदा – विखंडन – अनुतोष – वादकालीन अंतरिती द्वारा उक्त अनुतोष का अनुरोध किया जा सकता है ।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – धारा 28 – संविदा का विखंडन – अनुतोष – विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् उक्त अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता ।

इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन में निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा न्यायालय ने अपने उस पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन करने से इनकार किया है जिसके द्वारा निष्पादन कार्यवाहियां करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री को सम्यक् रूप से संतोषप्रद मानते हुए निपटा दी गई थीं । पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले के तथ्यों से यह उपदर्शित होता है कि अनावेदक द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए फाइल किया गया वाद तारीख 24 जनवरी, 1995 को डिक्री किया गया था । निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुसरण में अनावेदक द्वारा शेष प्रतिफल तारीख 20 अगस्त, 1999 को जमा किया गया था । आवेदक ने वाद संपत्ति तारीख 30 मार्च, 2007 को क्रय की थी और निष्पादन कार्यवाहियों में न्यायालय द्वारा अनावेदक के हक में विक्रय विलेख तारीख 19 जनवरी, 2009 को निष्पादित किया गया था । यह दावा किया गया है कि कब्जा अधिपत्र तारीख 13 नवंबर, 2009 को निष्पादित किया गया था । आवेदक द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री को दी गई चुनौती का प्रयास असफल रहा था और माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने तारीख 4 अगस्त, 2014 के निर्णय द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री को पुनःस्थापित करते

हुए यह अभिनिर्धारित किया कि आवेदक वाद संपत्ति का वास्तविक क्रेता नहीं था । आवेदक द्वारा उठाया गया आक्षेप मुख्यतया सतर्कता की कमी और अनावेदक द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के अनुसरण में प्रतिफल की शेष धनराशि का संदाय के लिए कार्रवाई करने में विलंब के संबंध में है । यद्यपि यह सही है कि संविदा के विखंडन का अनुतोष वादकालीन अंतरिती द्वारा मांगा जा सकता है और न्यायालय ऐसे आवेदन का विनिश्चय करते समय केवल पूर्वतर अधिकारों के बारे में विनिश्चय कर सकता है और यह तथ्य कि विखंडन के ऐसे अधिकार का प्रयोग मूल वादी के हक में विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् ही किया जाना चाहिए, आवेदक के लिए घातक तथ्य है । चूंकि विक्रय विलेख तारीख 19 जनवरी, 2009 को निष्पादित किया गया है इसलिए निष्पादन न्यायालय ने संविदा के विखंडन के लिए अनुरोध पर विचार करने की अधिकारिता खो दी थी । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि आरंभतः आवेदक ने तारीख 28 दिसंबर, 2009 को, तारीख 10 फरवरी, 2009 के आदेश का जिसके द्वारा कब्जा अधिपत्र जारी किया गया था और तारीख 13 नवंबर, 2009 के आदेश के जिसके बारे में कब्जा अधिपत्र के निष्पादन का दावा किया गया है, पुनर्विलोकन की ईप्सा की थी । विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री को आक्षेपित करने के पश्चात् जो अंततः तारीख 4 अगस्त, 2014 को अंतिम बन गई थी, आवेदक ने उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन संविदा के विखंडन के लिए प्रयास किया था । इस संबंध में तारीख 25 सितंबर, 2014 को आवेदन किया गया था । यह आवेदन अनावेदक के हक में विक्रय विलेख का निष्पादन करने के 5 वर्ष से भी अधिक समय के पश्चात् किया गया था । अभिलेख पर की उक्त स्वीकृत स्थिति को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन आवेदक द्वारा संविदा के विखंडन के लिए किया गया अनुरोध किसी भी प्रकार से स्वीकार किए जाने योग्य नहीं था । तथ्यतः निष्पादन न्यायालय ने विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् संविदा के विखंडन के लिए अनुरोध पर विचार करने की अपनी अधिकारिता खो दी थी । अभिलेख के प्रयोजन के लिए यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि स्वयं आवेदक ने तारीख 28 दिसंबर, 2009 के पुनर्विलोकन आवेदन के आधार (क) में यह अभिवचन किया है कि न्यायालय विक्रय विलेख के निष्पादन पर पद-कार्य-निवृत्त हो गया था । उपर्युक्त निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए आवेदक के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 28 के संबंध में

अवलंब लिए गए विनिश्चयों में प्रतिपादित सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता । (पैरा 9 और 10)

जहां तक निष्पादन न्यायालय द्वारा शेष प्रतिफल जमा करने के लिए समय दिए जाने के प्रक्रम पर निर्णीत ऋणी को सम्यक् सूचना न भेजने के संबंध में किए गए आक्षेप के आधार का संबंध है, इस पहलू पर मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए विचार किया जाना चाहिए । विचारण न्यायालय ने विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री पारित करते समय शेष प्रतिफल का संदाय किए जाने के लिए कोई अवधि नियत नहीं की थी । यद्यपि यह सही है कि शेष प्रतिफल का ऐसा संदाय युक्तियुक्त अवधि के भीतर किया जाना चाहिए, तथापि, वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए उक्त पहलू अपना महत्व खो देता है जहां यह पाया जाए कि आवेदक उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन संविदा के विखंडन के अनुतोष के लिए हकदार नहीं है । इसके अतिरिक्त, शेष प्रतिफल के संदाय के लिए डिक्री में नियत किसी अवधि के अभाव में मामला ऐसी धनराशि को जमा करने के लिए विस्तृत समय दिए जाने के अन्तर्गत आता है । चार हजार रुपए जमा करने की अनुमति के लिए आवेदन प्रदर्श-7, तारीख 13 जनवरी, 1997 को फाइल किया गया था और यह तारीख 24 जून, 1999 को मंजूर किया गया था । संदाय करने के लिए समय चाहने वाला आवेदन प्रदर्श-8, तारीख 13 अगस्त, 1999 को फाइल किया गया था और यह उसी तारीख को मंजूर किया गया था । यद्यपि यह दलील दी गई है कि तारीख 13 जनवरी, 1997 का आदेश और तारीख 13 अगस्त, 1999 का आदेश निर्णीत ऋणी को सूचना जारी किए बिना पारित किया गया था । वाद के मूल प्रतिवादी द्वारा विरोध नहीं किया गया था और यह तारीख 24 जनवरी, 1995 को डिक्री हुआ था । इसके पश्चात् निष्पादन कार्यवाहियां वर्ष 1996 में फाइल की गई थीं । यद्यपि शेष प्रतिफल तारीख 20 अगस्त, 1999 को जमा किया गया था, तथापि, न्यायालय द्वारा विक्रय विलेख तारीख 17 जनवरी, 2009 को निष्पादित किया गया था और कब्जा अधिपत्र तारीख 13 नवंबर, 2009 को निष्पादित किया गया था । किसी भी समय पर मूल प्रतिवादी ने या पश्चात्वर्ती क्रेता रतनमाला फोपारे ने सूचना की तामील न होने के संबंध में कोई शिकायत नहीं की थी । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायलय के समक्ष के आवेदक को वास्तविक क्रेता नहीं माना गया था और इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन संविदा के

विखंडन के अनुतोष के लिए भी हकदार नहीं है । इन तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए, निष्पादन न्यायालय द्वारा शेष प्रतिफल को जमा करने के लिए समय मंजूर करने में अपनी पुनर्विलोकन अधिकारिता के प्रयोग में आवेदक के अनुरोध पर ठीक ही हस्तक्षेप नहीं किया गया है । अतः न्यायालय उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में मामले में पुनरीक्षणीय अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए तैयार नहीं है । (पैरा 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	2017 (1) स्केल 666 : **प्रेम जीवन** बनाम **के. एस. वेंकट रमण और एक अन्य** ;	5
[2014]	(2014) 15 एस. सी. सी. 689 : **नरिन्दर एस. चड्ढा और अन्य** बनाम **ग्रेटर मुम्बई नगर निगम और अन्य** ;	5
[2014]	(2014) 15 एस. सी. सी. 529 : **राजिन्दर सिंह** बनाम **कुलदीप सिंह और अन्य** ;	8
[2010]	2010 (3) एम. एल. जे. 417 (एस. सी.) : **द्वारका प्रसाद** बनाम **निर्मला और अन्य** ;	11
[2009]	(2009) 17 एस. सी. सी. 27 : **अजहर सुलताना** बनाम **बी. राजमणि और अन्य** ;	5, 9
[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 703 : **असित कुमार कार** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** ;	5
[2004]	(2004) 2 एस. सी. सी. 601 : **राज कुमार** बनाम **सरदारी लाल और अन्य** ;	5,9
[2001]	(2001) 5 ए. एल. टी. 417 : **पगडाला पेड्डा यादय्या** बनाम **के. अन्नपूर्णा के. प्रसाद और अन्य** ;	5, 11
[1997]	(1997) 9 एस. सी. सी. 217 : **सरदार मोहर सिंह द्वारा मुख्तार मंजीत सिंह** बनाम **मांगी लाल** उर्फ **मंगतया** ;	8, 11

[1982] (1982) 2 एस. सी. सी. 385 :
आंध्र प्रदेश सरकार बनाम **वाई. एस. प्रकाश राव और एक अन्य ;** 5,11

[1972] (1972) 3 एस. सी. सी. 684 :
हंगरफोर्ड इनवेस्टमेन्ट ट्रस्ट लि. बनाम **हरि दास मुन्दरा और अन्य ।** 5, 8

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2016 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 95.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से सर्वश्री एम. जी. भांगड़े ज्येष्ठ अधिवक्ता और राहुल भांगड़े

अनावेदक की ओर से श्री आर. आर. राठौर

न्यायमूर्ति ए. एस. चन्दूरकर – विचारणार्थ स्वीकृत । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की सहमति पर मामले को अंतिम रूप से सुना गया ।

2. इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन में निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा न्यायालय ने अपने उस पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन करने से इनकार किया है जिसके द्वारा निष्पादन कार्यवाहियां करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री को सम्यक् रूप से संतोषप्रद मानते हुए निपटा दी गई थीं ।

3. आक्षेपित आदेश में यथा उल्लिखित आक्षेप का विनिश्चय करने के लिए प्रथमतः अभिलेख पर निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक होगा जो इस प्रकार हैं – भूमि खसरा सं. 146/3 जिसका माप 69 गुंठा है, सुरेश मनकड़ नामक व्यक्ति का था । उसने उक्त भूमि 22,000 हजार रुपए के प्रतिफल के बदले अनावेदक को विक्रीत करने के लिए तारीख 22 मार्च, 1990 को एक करार किया था जिसमें अग्रिम धनराशि के रूप में 18 हजार रुपए उसी समय संदत्त किए गए थे और शेष धनराशि अर्थात् 4 हजार रुपए 11 महीने की अवधि के भीतर संदत्त किए जाने थे और तत्पश्चात् विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना था । अनावेदक-वादी ने 12 दिसंबर, 1991 को उपर्युक्त करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद फाइल किया था । वाद के लंबन के दौरान प्रतिवादी सुरेश मनकड़ ने उक्त

संपत्ति श्रीमती रतन माला फोपारे नामक महिला को विक्रीत कर दी । इसके पश्चात् प्रतिवादी ने तारीख 17 दिसंबर, 1993 को विनिर्दिष्ट अनुपालन वाद में कार्यवाही की, तथापि, कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया । विचारण न्यायालय ने तारीख 24 जनवरी, 1995 को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद डिक्री कर दिया और यह निदेश दिया कि शेष धनराशि 4 हजार रुपए का संदाय करने पर विक्रय विलेख का निष्पादन किया जाए । शेष प्रतिफल के संदाय के लिए कोई अवधि नियत नहीं की गई थी । इसके पश्चात् वादी ने डिक्री के निष्पादन के लिए कार्यवाही की । उसने तारीख 13 जनवरी, 1997 को निष्पादन न्यायालय के समक्ष शेष प्रतिफल जमा करने के लिए अनुमति चाही । तारीख 24 जून, 1999 को अनुमति प्रदान कर दी गई थी । तथापि, उक्त धनराशि जमा नहीं की गई थी और इसलिए तारीख 13 अगस्त, 1997 को वादी-डिक्रीधारक ने दूसरा आवेदन फाइल किया जिसमें उसने उपर्युक्त धनराशि को जमा करने के लिए समय चाहा । उक्त आवेदन उसी दिन मंजूर किया गया था और तारीख 20 अगस्त, 1999 को शेष धनराशि जमा कर दी गई थी ।

4. हमारे समक्ष के आवेदक ने तारीख 3 मार्च, 2000 को उक्त संपत्ति 2,80,000 हजार रुपए में श्रीमती रतनमाला फोपारे से क्रय की थी । निष्पादन न्यायालय ने तारीख 18 नवंबर, 2008 को निष्पादन कार्यवाहियों में नाजिर को डिक्री धारक के हक में विक्रय विलेख निष्पादित करने का निदेश दिया । तद्नुसार तारीख 18 जनवरी, 2009 को वादी के हक में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था । निष्पादन न्यायालय ने तारीख 10 फरवरी, 2009 को कब्जा अधिपत्र जारी किया और यह दावा किया गया है कि तारीख 13 नवंबर, 2009 को वादी को कब्जा देकर इस अधिपत्र का निष्पादन किया गया था । इसके पश्चात्, आवेदक ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे आगे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 96 के अधीन अपील फाइल करके विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री को आक्षेपित किया था । उसने निष्पादन न्यायालय के समक्ष एक पुनर्विलोकन आवेदन भी फाइल किया जिसमें उसने 10 फरवरी, 2009 के आदेश का पुनर्विलोकन चाहा जिसके द्वारा कब्जा अधिपत्र जारी किया गया था और अपने कब्जे की वापसी के लिए अनुरोध किया । अपील न्यायालय ने तारीख 14 अप्रैल, 2011 को आवेदक द्वारा फाइल अपील मंजूर कर ली और विचारण न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त डिक्री को अपास्त करने के पश्चात् वाद नए सिरे से न्यायनिर्णयन के लिए प्रतिप्रेषित किया । वादी द्वारा

अपील न्यायालय द्वारा पारित आदेश (2012 का आदेश सं. 18) को इस न्यायालय में अपील फाइल करके आक्षेपित किया गया था । तथापि, यह अपील तारीख 17 जुलाई, 2012 को खारिज कर दी गई थी । वादी ने इस आदेश से व्यथित होकर इसे माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष आक्षेपित किया । वादी द्वारा फाइल की गई अपील तारीख 14 अगस्त, 2014 को मंजूर की गई थी और अपील में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को तथा प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषण के आदेश को अपास्त करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को पुनःस्थापित किया गया था । इसके पश्चात् आवेदक ने आवेदन प्रदर्श-6 फाइल किया जिसमें उसने पुनर्विलोकन आवेदन को संशोधित करने का अनुरोध किया । यह दलील दी गई थी कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 28 के अधीन तारीख 22 मार्च, 1990 का करार विखंडित हो गया था । वादी द्वारा इस आवेदन का विरोध किया गया था और निष्पादन न्यायालय ने तारीख 5 दिसंबर, 2014 के आक्षेपित आदेश द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया । इससे व्यथित होकर आवेदक ने वर्तमान सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया है ।

5. आवेदक की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एम. जी. भांगड़े ने यह दलील दी कि निष्पादन न्यायालय उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन तारीख 22 मार्च, 1990 की संविदा को विखंडित करने में न्यायोचित नहीं था । उन्होंने यह दलील दी कि यद्यपि 4 हजार रुपए के शेष प्रतिफल के संदाय के लिए विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री में कोई अवधि नियत नहीं की गई थी, तथापि, डिक्रीधारक द्वारा यह धनराशि युक्तियुक्त समय के भीतर जमा करनी आवश्यक थी । तारीख 22 मार्च, 1990 के करार के अनुसार शेष धनराशि करार के 11 मास के भीतर संदत्त की जानी थी ; तथापि, वस्तुतः उक्त धनराशि विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित करने के लगभग 4 वर्ष 7 मास पश्चात् जमा की गई थी । डिक्रीधारक द्वारा युक्तियुक्त समय के भीतर शेष धनराशि जमा करने में विफल होने के कारण संविदा विखंडित हो गई थी । इसके पश्चात् उन्होंने यह दलील दी कि सिविल न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री पारित करते हुए पद-कार्य-निवृत्त नहीं हो जाता और वह उसके पश्चात् भी कार्यवाहियां कर सकता है । विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री पारित करने का यह अर्थ नहीं होता कि अंतिम डिक्री पारित कर दी गई थी । न्यायालय को शेष प्रतिफल जमा करने में डिक्रीधारक की ओर से हुए विलंब पर विचार करने

के पश्चात् संविदा को विखंडित मानना चाहिए । यह दलील दी गई है कि डिक्रीधारक का आचरण इस प्रकार का था कि तारीख 22 जून, 1999 को शेष प्रतिफल जमा करने की अनुमति के पश्चात् भी उक्त धनराशि तारीख 20 अगस्त, 1999 को जमा की गई थी । इसके अतिरिक्त शेष प्रतिफल को जमा करने के लिए अनुमति और समय देने का डिक्रीधारक का अनुरोध और मंजूरी निर्णीत ऋणी को कोई सूचना दिए बिना दी गई थी । निष्पादन न्यायालय ने प्रदर्श-7 और प्रदर्श-8 पारित करके नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण किया जिससे ये आदेश दूषित हो गए । यह दलील दी गई है कि वादकालीन अंतरिती के रूप में आवेदक ने संविदा के विखंडन के लिए अनुरोध करके अपने अधिकारों के भीतर कार्य किया था और इसलिए निष्पादन न्यायालय ने इसके सही परिप्रेक्ष्य में अनुरोध पर विचार न करके आवेदक के अधिकारों के विरुद्ध कार्य किया । यह दलील दी गई है कि तारीख 22 मार्च, 1990 का करार पहले ही विखंडित हो चुका था और पक्षकारों के पूर्ववर्ती अधिकारों का न्यायनिर्णयन किया जाना था । यह दलील दी गई है कि मात्र इस कारण कि विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री अंतिम बन गई थी, निष्पादन न्यायालय ने आवेदक द्वारा करार के विखंडन के लिए किए गए अनुरोध पर विचार नहीं किया । विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है :–

(1) **नरिन्दर एस. चड्ढा और अन्य** बनाम **ग्रेटर मुम्बई नगर निगम और अन्य**[1]

(2) **पगडाला पेड्डा यादय्या** बनाम **के. अन्नपूर्णा के. प्रसाद और अन्य**[2]

(3) **हंगरफोर्ड इनवेस्टमेंट ट्रस्ट लि.** बनाम **हरि दास मुन्दरा और अन्य**[3]

(4) **राजकुमार** बनाम **सरदारी लाल और अन्य**[4]

(5) **आंध्र प्रदेश सरकार** बनाम **वाई. एस. प्रकाश राव और**

---

[1] (2014) 15 एस. सी. सी. 689.
[2] (2001) 5 ए. एल. टी. 417.
[3] (1972) 3 एस. सी. सी. 684.
[4] (2004) 2 एस. सी. सी. 601.

एक अन्य[1]

(6) **असित कुमार कार** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य**[2]

(7) **अजहर सुलताना** बनाम **बी. राज मणि और अन्य**[3]

(8) **प्रेम जीवन** बनाम **के. एस. वेंकट रमण और एक अन्य**[4]

6. अनावेदक के विद्वान् काउंसेल श्री आर. आर. राठौर द्वारा उक्त दलीलों का विरोध किया गया है । उनके अनुसार वादी ने युक्तियुक्त समय के भीतर विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री का अनुपालन किया था । तारीख 24 जनवरी, 1995 को वाद डिक्री होने के पश्चात् तारीख 3 जनवरी, 1997 को शेष प्रतिफल जमा करने के लिए अनुमति मांगी गई थी और उक्त धनराशि तारीख 20 अगस्त, 1999 को जमा कर दी गई थी । उन्होंने यह दलील दी कि आवेदक ने पश्चात्वर्ती क्रेता के रूप में विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री को आक्षेपित किया था तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए आक्षेप खारिज कर दिया था कि आवेदक वाद-संपत्ति का वास्तविक क्रेता नहीं था । तत्पश्चात् उन्होंने यह दलील दी कि विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री मूल प्रतिवादी सुरेश मनकड़ के विरुद्ध निष्पादित किए जाने का अनुरोध किया गया था । मूल प्रतिवादी पर निष्पादन कार्यवाहियों की सम्यक्तः तामील की गई थी और उसके पश्चात् ही डिक्री निष्पादित की गई थी । निष्पादन न्यायालय द्वारा वादी के हक में निष्पादित विक्रय विलेख के आधार पर उसे काबिज कराया गया था । निर्णीत ऋणी के लिए उपर्युक्त कार्यवाहियों की जानकारी इस बात में विवक्षित है कि वादकालीन अंतरिती को भी इसकी जानकारी थी । विद्वान् काउंसेल के अनुसार निष्पादन न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय आवेदक द्वारा लिए गए सभी आधारों पर विचार किया था । उन्होंने यह दलील देने के लिए संहिता के आदेश 21, नियम 100 के उपबंधों का निर्देश किया था कि पश्चात्वर्ती क्रेता डिक्री निष्पादन के समय सुनवाई के लिए हकदार नहीं था । अतः उन्होंने यह दलील दी कि डिक्री का निष्पादन हो गया है और चूंकि वादी काबिज हो गया है इसलिए अब संविदा को विखंडित करने का कोई प्रश्न नहीं था । अतः उन्होंने यह

---

[1] (1982) 2 एस. सी. सी. 385.
[2] (2009) 2 एस. सी. सी. 703.
[3] (2009) 17 एस. सी. सी. 27.
[4] 2017 (1) स्केल 666.

दलील दी कि सिविल आवेदन खारिज किए जाने योग्य है । प्रत्युत्तर में आवेदक की ओर से यह दलील दी गई है कि आवेदक द्वारा आक्षेप संहिता की धारा 47 के अधीन किए गए थे और इसलिए इन आक्षेपों पर गुणदोष के आधार पर विचार किया गया था । यह भी दलील दी गई है कि निष्पादन न्यायालय ने आवेदन प्रदर्श-7 और प्रदर्श-8 का विनिश्चय करते समय निर्णीत ऋणी को जारी सूचना के संबंध में कोई निष्कर्ष अभिलखित नहीं किया था । निष्पादन न्यायालय ने वाद में के मूल प्रतिवादी पर तामील के संबंध में विचार किया था न कि निष्पादन कार्यवाहियों के संबंध में ।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना और दी गई दलीलों पर गहराई से विचार किया ।

8. चूंकि आक्षेपित आदेश को दी गई चुनौती उक्त अधिनियम की धारा 28 के उपबंधों से सबंधित है इसलिए प्रथमतः उक्त उपबंध के क्षेत्र की परीक्षा किए जाने की आवश्यकता है । उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन न्यायालय को जंगम संपत्ति के विक्रय को या पट्टे की संविदा को उन कतिपय परिस्थितियों में विखंडित करने के लिए शक्ति प्रदत्त की गई है जिसमें विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री पारित की गई है । धारा 28 उक्त अधिनियम के अध्याय 4 में दी गई है जो संविदाओं के विखंडन के संबंध में है । यह सुस्थापित है, जैसा कि **हंगर फोर्ड इनवेस्टमेंट ट्रस्ट लि.** बनाम **हरि दास मुन्दरा और अन्य**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है कि विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् भी न्यायालय को डिक्री पर नियंत्रण होता है । विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री प्रारंभिक डिक्री की प्रकृति की मानी जाएगी । इन शक्तियों का "जैसी कि न्याय की अपेक्षा हो" प्रयोग किया जाएगा जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 28(1) में उपबंधित है । जैसा कि **राजिन्दर सिंह** बनाम **कुलदीप सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि पक्षकारों को न्यायालय में समावेदन करते समय यह महसूस होना चाहिए कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्याय किया गया है । जिस बात पर बल दिए जाने की आवश्यकता है वह विखंडित संविदाओं के लिए शक्ति का प्रदान है । दूसरे शब्दों में इस शक्ति का प्रयोग संविदा निष्पादित किए जाने के प्रक्रम तक किया जा सकता है । इस मत को माननीय

---

[1] (1972) 3 एस. सी. सी. 684.

[2] (2014) 15 एस. सी. सी. 529.

उच्चतम न्यायालय द्वारा **सरदार मोहर सिंह** द्वारा **मुख्तार मंजीत सिंह** बनाम **मांगी लाल उर्फ मंगतया**[1] वाले मामले में अभिव्यक्त मत से समर्थन मिलता है । उक्त विनिश्चय के पैरा 4 में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है :–

> "4. धारा 28 की उपधारा (1) की भाषा से यह उपदर्शित होता है कि न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री मंजूर करने के पश्चात् अपनी अधिकारिता नहीं खोता और न ही वह पद-कार्य-निवृत्त हो जाता है । इस तथ्य से कि धारा 28 स्वतः डिक्री के विखंडन के आदेश की मंजूरी के लिए शक्ति प्रदत्त करती है, यह उपदर्शित होता है कि डिक्री के निष्पादन में विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने तक विचारण न्यायालय को विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री पर विचार करने के लिए शक्ति और अधिकारिता होती है.......... ।"

अतः यह स्पष्ट है कि न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए किसी डिक्री को पारित करने के पश्चात् भी पद-कार्य-निवृत्त नहीं होता और उसे डिक्री के निष्पादन में निष्पादित विक्रय विलेख के निष्पादन तक शक्ति प्राप्त होती है । जब एक बार ऐसे विक्रय विलेख का निष्पादन हो जाता है तो हस्तांतरण के दस्तावेज के निष्पादन के आधार पर संविदा पूर्ण हो जाती है और विखंडन के लिए कुछ नहीं रह जाता । मामले पर भिन्न दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है । उक्त अधिनियम की धारा 28(2) यह उपबंध करती है कि जहां संविदा विखंडित हो जाती है वहां संविदा के अधीन प्राप्त किया गया कब्जा वापस लिए जाने की आवश्यकता होती है । इसके विपरीत जहां क्रेता को क्रय धन संदाय करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है वहां उक्त अधिनियम की धारा 28(3) के अनुसार विक्रेता को समुचित हस्तातंरण का निष्पादन करने के लिए निदेश किया जा सकता है । उक्त अधिनियम की धारा 28 में हस्तांतरण विलेख को अपास्त करने या विखंडित करने के लिए कोई शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है । अतः उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन प्रवर्तन विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् समाप्त हो जाता है । यह उल्लेखनीय है कि विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् उस अनुतोष को रद्द किया जाना चाहिए जो उक्त अधिनियम के अध्याय 5 के अधीन मांगा गया था । यह अध्याय विधि में उपलब्ध अन्य किसी उपचार के अतिरिक्त लिखतों के रद्दकरण के संबंध में उपबंध करता है ।

---

[1] (1997) 9 एस. सी. सी. 217.

9. वर्तमान मामले के तथ्यों से यह उपदर्शित होता है कि अनावेदक द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए फाइल किया गया वाद तारीख 24 जनवरी, 1995 को डिक्री किया गया था । निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुसरण में अनावेदक द्वारा शेष प्रतिफल तारीख 20 अगस्त, 1999 को जमा किया गया था । आवेदक ने वाद संपत्ति तारीख 30 मार्च, 2007 को क्रय की थी और निष्पादन कार्यवाहियों में न्यायालय द्वारा अनावेदक के हक में विक्रय विलेख तारीख 19 जनवरी, 2009 को निष्पादित किया गया था । यह दावा किया गया है कि कब्जा अधिपत्र तारीख 13 नवंबर, 2009 को निष्पादित किया गया था । आवेदक द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री को दी गई चुनौती का प्रयास असफल रहा था और माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने तारीख 4 अगस्त, 2014 के निर्णय द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री को पुनःस्थापित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि आवेदक वाद संपत्ति का वास्तविक क्रेता नहीं था । ऊपर उल्लिखित विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए और **राज कुमार** बनाम **सरदारी लाल और अन्य**[1] तथा **अजहर सुलताना** बनाम **बी. राज मणि और अन्य**[2] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों में अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए यथा अभिकथित आक्षेपों का उत्तर देने की आवश्यकता है ।

10. आवेदक द्वारा उठाया गया आक्षेप मुख्यतया सतर्कता की कमी और अनावेदक द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के अनुसरण में प्रतिफल की शेष धनराशि के संदाय के लिए कार्रवाई करने में विलंब के संबंध में है । यद्यपि यह सही है कि संविदा के विखंडन का अनुतोष वादकालीन अंतरिती द्वारा मांगा जा सकता है और न्यायालय ऐसे आवेदन का विनिश्चय करते समय केवल पूर्वतर अधिकारों के बारे में विनिश्चय कर सकता है और यह तथ्य कि विखंडन के ऐसे अधिकार का प्रयोग मूल वादी के हक में विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् ही किया जाना चाहिए, आवेदक के लिए घातक तथ्य है । चूंकि विक्रय विलेख तारीख 19 जनवरी, 2009 को निष्पादित किया गया है इसलिए निष्पादन न्यायालय ने संविदा के विखंडन के लिए अनुरोध पर विचार करने की अधिकारिता खो दी थी । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि आरंभतः आवेदक ने तारीख 28 दिसंबर, 2009 को तारीख 10 फरवरी, 2009 के आदेश का जिसके द्वारा कब्जा अधिपत्र जारी

---

[1] (2004) 2 एस. सी. सी. 601.

[2] (2009) 17 एस. सी. सी. 27.

किया गया था और तारीख 13 नवंबर, 2009 के आदेश के जिसके बारे में कब्जा अधिपत्र के निष्पादन का दावा किया गया है, पुनर्विलोकन की ईप्सा की थी । विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री को आक्षेपित करने के पश्चात् जो अंततः तारीख 4 अगस्त, 2014 को अंतिम बन गई थी, आवेदक ने उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन संविदा के विखंडन के लिए प्रयास किया था । इस संबंध में तारीख 25 सितंबर, 2014 को आवेदन किया गया था । यह आवेदन अनावेदक के हक में विक्रय विलेख का निष्पादन करने के 5 वर्ष से भी अधिक समय के पश्चात् किया गया था । अभिलेख पर की उक्त स्वीकृत स्थिति को दृष्टिगत करते हुए मुझे यह प्रतीत होता है कि उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन आवेदक द्वारा संविदा के विखंडन के लिए किया गया अनुरोध किसी भी प्रकार से स्वीकार किए जाने योग्य नहीं था । तथ्यतः निष्पादन न्यायालय ने विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् संविदा के विखंडन के लिए अनुरोध पर विचार करने की अपनी अधिकारिता खो दी थी । अभिलेख के प्रयोजन के लिए यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि स्वयं आवेदक ने तारीख 28 दिसंबर, 2009 के पुनर्विलोकन आवेदन के आधार (क) में यह अभिवचन किया है कि न्यायालय विक्रय विलेख के निष्पादन पर पद-कार्य-निवृत्त हो गया था । उपर्युक्त निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए आवेदक के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 28 के संबंध में अवलंब लिए गए विनिश्चयों में प्रतिपादित सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता ।

11. जहां तक निष्पादन न्यायालय द्वारा शेष प्रतिफल जमा करने के लिए समय दिए जाने के प्रक्रम पर निर्णीत ऋणी को सम्यक् सूचना न भेजने के संबंध में किए गए आक्षेप के आधार का संबंध है, इस पहलू पर मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए विचार किया जाना चाहिए । विचारण न्यायालय ने विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री पारित करते समय शेष प्रतिफल का संदाय किए जाने के लिए कोई अवधि नियत नहीं की थी । यद्यपि यह सही है कि शेष प्रतिफल का ऐसा संदाय युक्तियुक्त अवधि के भीतर किया जाना चाहिए, तथापि, वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए उक्त पहलू अपना महत्व खो देता है, जहां यह पाया जाए कि आवेदक उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन संविदा के विखंडन के अनुतोष के लिए हकदार नहीं है । इसके अतिरिक्त, शेष प्रतिफल के संदाय के लिए डिक्री में नियत किसी अवधि के अभाव में मामला ऐसी धनराशि

को जमा करने के लिए विस्तृत समय दिए जाने के अन्तर्गत आता है । जैसा कि **सरदार मोहर सिंह**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है कि अवधि का विस्तार विलंब माफी से भिन्न है और ऐसे विस्तार की मंजूरी निष्पादन न्यायालय के विवेकाधिकार के भीतर आता है । चार हजार रुपए जमा करने की अनुमति के लिए आवेदन प्रदर्श-7, तारीख 13 जनवरी, 1997 को फाइल किया गया था और यह तारीख 24 जून, 1999 को मंजूर किया गया था । संदाय करने के लिए समय चाहने वाला आवेदन प्रदर्श-8, तारीख 13 अगस्त, 1999 को फाइल किया गया था और यह उसी तारीख को मंजूर किया गया था । यद्यपि यह दलील दी गई है कि तारीख 13 जनवरी, 1997 का आदेश और तारीख 13 अगस्त, 1999 का आदेश निर्णीतऋणी को सूचना जारी किए बिना पारित किया गया था और इसलिए **आंध्र प्रदेश सरकार** बनाम **वाई. एस. प्रकाश राव और एक अन्य**[2] तथा **पगडाला पेड्डा यादय्या** बनाम **के. अन्नपूर्णा के. प्रसाद और अन्य**[3] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों में अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए शून्य हैं, यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती । वाद का मूल प्रतिवादी द्वारा विरोध नहीं किया गया था और यह तारीख 24 जनवरी, 1995 को डिक्री हुआ था । इसके पश्चात् निष्पादन कार्यवाहियां वर्ष 1996 में फाइल की गई थीं । यद्यपि शेष प्रतिफल तारीख 20 अगस्त, 1999 को जमा किया गया था, तथापि, विक्रय विलेख तारीख 17 जनवरी, 2009 को न्यायालय द्वारा निष्पादित किया गया था और कब्जा अधिपत्र तारीख 13 नवंबर, 2009 को निष्पादित किया गया था । किसी भी समय पर मूल प्रतिवादी ने या पश्चात्वर्ती क्रेता रतनमाला फोपारे ने सूचना की तामील न होने के संबंध में कोई शिकायत नहीं की थी । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा हमारे समक्ष के आवेदक को वास्तविक क्रेता नहीं माना गया था और इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह उक्त अधिनियम की धारा 28 के अधीन संविदा के विखंडन के अनुतोष के लिए भी हकदार नहीं है । इन तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए, निष्पादन न्यायालय द्वारा शेष प्रतिफल को जमा करने के लिए समय मंजूर करने में अपनी पुनर्विलोकन अधिकारिता के प्रयोग में आवेदक के अनुरोध पर ठीक ही हस्तक्षेप नहीं किया गया है । अतः मैं उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में मामले में पुनरीक्षणीय

---

[1] (1997) 9 एस. सी. सी. 217.

[2] (1982) 2 एस. सी. सी. 385.

[3] 2001 (5) ए. एल. टी. 417.

अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए तैयार नहीं हूं । इसके अतिरिक्त जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **द्वारका प्रसाद** बनाम **निर्मला और अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय अधिकारिता, जैसा कि संहिता की धारा 115 में यथाउल्लिखित है, यह सुनिश्चित करने के लिए आशियत है कि पक्षकारों के बीच न्याय किया जाए ।

12. उपर्युक्त चर्चा के परिणामस्वरूप मेरा यह सुविचारित मत है कि विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई गलती नहीं की है । अतः सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है, तथापि, खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

(2018) 1 सि. नि. प. 605   **मद्रास**

कुरियन थामस (डा.)

बनाम

आर. सुन्दरराजन और अन्य

तारीख 19 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति राजीव शकधर और न्यायमूर्ति अब्दुल कुद्दूस

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 9, नियम 13 और आदेश 17, नियम 2 और 3 – नुकसानी के लिए वाद – एकपक्षीय डिक्री – विचारण न्यायालय द्वारा एक पक्षीय कार्यवाही में गुण-दोष के आधार पर आदेश पारित किया जाना – अपील – ग्राह्यता – जहां कोई पक्षकार अनुपस्थित है वहां न्यायालय आदेश 17 के नियम 2 के अधीन कार्यवाही करेगा – व्यथित पक्षकार सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल कर सकता है और ऐसे आवेदन की खारिजी पर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जा सकती है ।

---

[1] 2010 (3) एम. एल. जे. 417 (एस. सी.).

यह अपील विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2010 के आवेदन सं. 3106 और 2002 के सिविल वाद सं. 867 में तारीख 26 जुलाई, 2016 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील की गई है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन को खारिज किया है । अपील में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – आदेश 17, नियम 3 का खंड (क) यह उपबंधित करता है कि जहां पक्षकार हाजिर हैं वहां न्यायालय वाद को गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित कर सकता है । तथापि, जहां पक्षकार या उनमें से कोई एक पक्षकार अनुपस्थित है वहां न्यायालय नियम (2) के अधीन कार्रवाई करने के लिए अग्रसर होगा । आदेश 17 का नियम 2 न्यायालय को वहां आदेश 9 के उपबंधों का आश्रय लेने के लिए सशक्त करता है जहां स्थगन की गई तारीख को पक्षकार या उनमें से कोई एक पक्षकार अनुपस्थित हो । वर्तमान मामले में स्थगन की तारीख को अपीलार्थी अर्थात् प्रतिवादी अनुपस्थित था । न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय ने आदेश 9, नियम 6(क) के उपबंधों का आश्रय लिया है और इसलिए मामले में एकपक्षीय निर्णय और डिक्री यद्यपि गुण-दोष के आधार पर, पारित की है । स्पष्टतया इन परिस्थितियों में इस तथ्य के होते हुए भी कि एकपक्षीय निर्णय गुण-दोष के आधार पर पारित किया गया था, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन संस्थित किया जा सकेगा । अतः न्यायालय के मतानुसार तर्कसंगतता के दृष्टिगत करते हुए ऐसे किसी आवेदन की खारिजी पर इस न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जा सकेगी । (पैरा 16 और 17)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की ओ. एस. ए. सं. 100.

विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2016 के आवेदन सं. 3106 और 2002 के सी. एस. सं. 867 में तारीख 26 जुलाई, 2016 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	मैसर्स एन. नंद कुमार की ओर से सर्वश्री टी. एम. हरिहरन और बी. तिलक नारायण
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री वी.लक्ष्मी नारायण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राजीव शकधर ने दिया ।

न्या. शकधर – यह अपील विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2010 के आवेदन सं. 3106 और 2006 के सी. एस. सं. 867 में तारीख 26 जुलाई, 2016 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील की गई है ।

2. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे आगे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) के आदेश 9, नियम 13 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन को खारिज किया है ।

3. संक्षेप में अपीलार्थी के आवेदन की खारिजी निम्नलिखित तथ्यों की पृष्ठभूमि में की गई है । प्रत्यर्थी/वादियों ने हमारे समक्ष के अपीलार्थी के विरुद्ध नुकसानी के लिए वाद फाइल किया था । चूंकि अपीलार्थी वाद में समनों की तामील के बावजूद उपस्थित होने में असफल रहा, इसलिए उसके विरुद्ध तारीख 28 फरवरी, 2005 को एकपक्षीय आदेश पारित किया गया । इसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी ने उक्त आदेश को अपास्त करने के लिए न्यायालय के समक्ष एक आवेदन अर्थात् 2005 का आवेदन सं. 1446 फाइल किया । उक्त आवेदन तारीख 17 मार्च, 2007 को फाइल किया गया था । आवेदन 19 सितंबर, 2006 को मंजूर किया गया था । इसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी ने वाद में लिखित कथन फाइल किया । हमें यह बताया गया है कि लिखित कथन सितंबर, 2006 में फाइल किया गया था ।

4. इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि इसके पश्चात् वाद 2015 में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ । प्रत्यर्थी/वादियों ने तारीख 16 जून, 2015 को अपना सबूत शपथपत्र फाइल किया ।

5. अपीलार्थी से प्रत्यर्थी/वादियों के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के लिए कहे जाने पर अपीलार्थी के काउंसेल ने वाद न्यायालय को यह सूचित किया कि उसे मामले में "कोई अनुदेश" प्राप्त नहीं है । ऐसा जुलाई, 2015 में या उसके आस-पास हुआ था । परिणामतः, प्रत्यर्थी/वादियों के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकी ।

6. इन परिस्थितियों में विद्वान् कोर्ट मास्टर ने मामला तारीख 14 मार्च, 2016 को सूचीबद्ध किया ।

7. अभिलेख से यह उपदर्शित होता है कि मामला तारीख 14 मार्च, 2016 को दो बार पुकारा गया था तथापि, अपीलार्थी की ओर से कोई प्रतिनिधि उपस्थित नहीं हुआ ।

8. तत्पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने मामला तारीख 18 मार्च, 2016 को "बहस" के लिए नियत किया । चूंकि अपीलार्थी की ओर से उस तारीख को कोई प्रतिनिधि यहां तक कि स्थगन तारीख को भी उपस्थित नहीं हुआ इसलिए विद्वान् न्यायाधीश ने मामला एकपक्षीय रूप से सुना और उसी तारीख को गुण-दोष के आधार पर निर्णय पारित किया ।

9. इसके पश्चात् अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन ऊपर उल्लिखित आवेदन फाइल किया । यह आवेदन तारीख 12 अप्रैल, 2016 को फाइल किया गया था । तथापि, विद्वान् न्यायाधीश ने जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि आक्षेपित आदेश द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया ।

10. इस पृष्ठभूमि में वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

11. यह पूर्णतया स्पष्ट है कि अपीलार्थी ने वाद में पैरवी करने में आवश्यक सतर्कता नहीं बरती । इसे देखते हुए मामले में गुण-दोष से संबंधित विभिन्न विवाद्यक विचार के लिए उद्भूत हुए हैं । पक्षकारों द्वारा फाइल अभिवचनों का जो अभिलेख पर उपलब्ध हैं, परिशीलन करके हमने अपना निष्कर्ष निकाला है ।

12. ऊपर जो उपदर्शित किया गया है उसके होते हुए भी दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों ने यह निवेदन किया कि मामले को शीघ्र निपटाया जाए ।

13. हम वाद कार्यवाहियों को शीघ्र निपटाने के लिए निदेश पारित करने की प्रस्थापना करते हैं । तथापि, प्रथमतः ऐसा करने से पूर्व हम श्री वी. लक्ष्मी नारायण द्वारा अपील के विरोध में उठाए गए एकमात्र आक्षेप पर विचार करते हैं जो यह है कि आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की जा सकती क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन प्रस्तुत आवेदन अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर खारिज किया गया कि एकपक्षीय निर्णय और डिक्री गुण-दोष के आधार पर पारित की गई है ।

14. इसके प्रतिकूल अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि चूंकि अपीलार्थी उपस्थित नहीं हुआ था इसलिए न्यायालय के पास एकमात्र विकल्प सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 17, नियम 3(ख) के उपबंधों के अनुसरण में कार्यवाही करना बचा था और इसलिए आवश्यक

परिणाम के रूप में न्यायालय ने आदेश 17, नियम 2 के अधीन कार्यवाही की जिसका यह अर्थ है कि न्यायालय को उपलब्ध विकल्प यह था कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 6(1)(क) में उल्लिखित उपबंधों के अनुसार कार्यवाही करे ।

15. इस आधार पर विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल आवेदन इस तथ्य के होते हुए भी पोषणीय था कि विद्वान् न्यायाधीश ने गुण-दोष के आधार पर वाद का विनिश्चय किया था ।

16. हम अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील से सहमत हैं। कि हम इस निष्कर्ष पर आदेश 17, नियम 3 और आदेश 17, नियम 2 के परिशीलन के आधार पर पहुंचे हैं । आदेश 17, नियम 3 का खंड (क) यह उपबंधित करता है कि जहां पक्षकार हाजिर हैं वहां न्यायालय वाद को गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित कर सकता है । तथापि, जहां पक्षकार या उनमें से कोई एक पक्षकार अनुपस्थित है वहां न्यायालय नियम (2) के अधीन कार्रवाई करने के लिए अग्रसर होगा । आदेश 17 का नियम 2 न्यायालय को वहां आदेश 9 के उपबंधों का आश्रय लेने के लिए सशक्त करता है जहां स्थगन की गई तारीख को पक्षकार या उनमें से कोई एक पक्षकार अनुपस्थित हो । वर्तमान मामले में स्थगन की तारीख को अपीलार्थी अर्थात् प्रतिवादी अनुपस्थित था ।

17. न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय ने आदेश 9, नियम 6(क) के उपबंधों का आश्रय लिया है और इसलिए मामले में एकपक्षीय निर्णय और डिक्री यद्यपि गुण-दोष के आधार पर, पारित की है । स्पष्टतया इन परिस्थितियों में इस तथ्य के होते हुए भी कि एकपक्षीय निर्णय गुण-दोष के आधार पर पारित किया गया था, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन संस्थित किया जा सकेगा । अतः हमारे मतानुसार तर्कसंगतता के दृष्टिगत करते हुए ऐसे किसी आवेदन की खारिजी पर इस न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जा सकेगी ।

18. अतः इसे दृष्टिगत करते हुए हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई कठिनाई नहीं है कि अपील की ग्राह्यता के बारे में श्री वी. लक्ष्मी नारायण द्वारा किया गया आक्षेप स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । तद्नुसार आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है । तथापि, इन

कठिनाइयों को दृष्टिगत करते हुए कि प्रत्यर्थी/वादियों को परेशानी हुई है, हम निम्नलिखित निदेश जारी करते हैं :–

(i) मामला विद्वान् कोर्ट मास्टर के समक्ष तारीख 2 अगस्त, 2017 को सूचीबद्ध किया जाए ; इस तारीख को प्रत्यर्थी/वादी अपने साक्षियों को प्रतिपरीक्षा के लिए पेश करेंगे ।

(ii) प्रतिपरीक्षा दिन-प्रतिदिन के आधार पर की जाएगी ।

(iii) प्रतिपरीक्षा के तुरन्त पश्चात् अपीलार्थी अपने साक्षियों के शपथपत्र फाइल करेगा, तथापि, प्रतिपरीक्षा की समाप्ति के पश्चात् प्रत्यर्थी/वादियों के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के लिए एक सप्ताह से अधिक का समय नहीं दिया जाएगा ।

(iv) इसके पश्चात् विद्वान् कोर्ट मास्टर अपीलार्थी/प्रतिवादी के साक्षियों के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के लिए तारीख नियत करेगा ; यह तारीख प्रत्यर्थी/वादियों के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की समाप्ति के ठीक पश्चात् की होगी ।

(v) विद्वान् मास्टर साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के पश्चात् मामले को पक्षकारों और/या उनके काउंसेलों द्वारा मामले के गुण-दोष पर दलीलें देने के लिए विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष पेश करेगा ।

19. यह अपील उपर्युक्त निदेश के निबंधनों में निपटाई जाती है । परिणामतः लंबित आवेदन को निपटाया जाता है । तथापि, अपीलार्थी, प्रत्यर्थी/वादियों को खर्चों के रूप में 50,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करेगा । उक्त खर्चा इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तारीख से दो सप्ताह की अवधि के भीतर संदत्त किया जाएगा ।

तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011

(2014 का अधिनियम संख्यांक 17)

[9 मई, 2014]

किसी लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार के किसी अभिकथन पर या जानबूझकर शक्ति के दुरुपयोग अथवा जानबूझकर विवेकाधिकार के दुरुपयोग के प्रकटन से संबंधित शिकायतों को स्वीकार करने के लिए कोई तंत्र स्थापित करने तथा ऐसे प्रकटन की जांच करने या जांच कराने तथा ऐसी शिकायत करने वाले व्यक्ति के उत्पीड़न से पर्याप्त सुरक्षा का तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के बासठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011 है ।

(2) इसका विस्तार, जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और ऐसे किसी उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रति निर्देश है ।

2. इस अधिनियम के उपबंधों का विशेष संरक्षा ग्रुप को लागू न होना – इस अधिनियम के उपबंध संघ के सशस्त्र बलों को, जो विशेष संरक्षा ग्रुप अधिनियम, 1988 (1988 का 34) के अधीन गठित विशेष संरक्षा ग्रुप है, लागू नहीं होंगे ।

3. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "केन्द्रीय सतर्कता आयोग" से केन्द्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का 45) की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन गठित आयोग अभिप्रेत है;

(ख) "सक्षम प्राधिकारी" से निम्नलिखित अभिप्रेत है, –

(i) संघ के मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के संबंध में, प्रधानमंत्री;

(ii) मंत्री से भिन्न संसद् के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, यदि ऐसा सदस्य राज्य सभा का सदस्य है तो राज्य सभा का सभापति या यदि ऐसा सदस्य लोक सभा का सदस्य है तो लोक सभा का अध्यक्ष;

(iii) किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में, मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का मुख्यमंत्री;

(iv) किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के किसी मंत्री से भिन्न, उस विधान परिषद् या विधान सभा के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, यदि ऐसा सदस्य विधान परिषद् का सदस्य है तो विधान परिषद् का सभापति या यदि ऐसा सदस्य विधान सभा का सदस्य है तो विधान सभा का अध्यक्ष;

(v) निम्नलिखित के संबंध में उच्च न्यायालय, –

(अ) कोई न्यायाधीश (उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के सिवाय) जिसके अंतर्गत स्वयं या व्यक्तियों के किसी निकाय के किसी सदस्य के रूप में किन्हीं न्यायनिर्णायक कृत्यों का निर्वहन करने के लिए विधि द्वारा सशक्त किया गया कोई व्यक्ति भी है; या

(आ) न्याय प्रशासन से संबंधित किसी कर्तव्य का पालन करने के लिए किसी न्यायालय द्वारा प्राधिकृत कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत ऐसे न्यायालय द्वारा

नियुक्त किया गया कोई समापक, रिसीवर या कमिश्नर भी है; या

(इ) कोई मध्यस्थ या अन्य व्यक्ति, जिसे कोई वाद या विषय किसी न्यायालय द्वारा या किसी सक्षम लोक प्राधिकारी द्वारा विनिश्चय या रिपोर्ट के लिए निर्दिष्ट किया गया है;

(vi) निम्नलिखित के संबंध में, केंद्रीय सतर्कता आयोग या कोई अन्य प्राधिकरण, जिसे केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे –

(अ) केंद्रीय सरकार की सेवा या वेतन में या किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए फीस या कमीशन के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा पारिश्रमिक पर या किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी सोसाइटी या स्थानीय प्राधिकारी या किसी निगम या केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या किसी निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति (मंत्रियों, संसद् सदस्यों और संविधान के अनुच्छेद 33 के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों या व्यक्तियों के सिवाय); या

(आ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे निर्वाचक नामावली तैयार, प्रकाशित, बनाए रखने या पुनरीक्षित करने या संसद् या राज्य विधान-मंडल के निर्वाचनों के संबंध में किसी निर्वाचन या किसी निर्वाचन के भाग का संचालन करने के लिए सशक्त किया गया है; या

(इ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे किसी लोक कर्तव्य

का पालन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है या उससे अपेक्षा की गई है (मंत्रियों और संसद् सदस्यों के सिवाय); या

(ई) ऐसा कोई व्यक्ति, जो केंद्रीय सरकार से या किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही या प्राप्त करने वाली कृषि, उद्योग, व्यवसाय या बैंककारी में लगी किसी रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी का या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या निकाय या किसी सरकारी कंपनी का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदधारी है; या

(उ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी केंद्रीय सेवा आयोग या बोर्ड का, चाहे जो भी नाम हो, अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा उस आयोग या बोर्ड की ओर से किसी परीक्षा का संचालन या कोई चयन करने के लिए नियुक्त की गई किसी चयन समिति का सदस्य है; या

(ऊ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा स्थापित या केंद्रीय सरकार द्वारा स्थापित या उसके नियंत्रणाधीन या वित्तपोषित किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या उसके शासी निकाय का सदस्य, आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, रीडर, प्राध्यापक या कोई अन्य अध्यापक या कर्मचारी, चाहे जो भी पदनाम हो, है या ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सेवाओं का ऐसे विश्वविद्यालय या किसी ऐसे लोक प्राधिकरण द्वारा परीक्षाएं आयोजित या संचालित करने के संबंध में उपभोग किया गया है; या

(ए) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसी किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्था जिसे किसी भी रीति में स्थापित किया गया है, का कोई पदधारी या कर्मचारी है जो केंद्रीय सरकार या किसी

स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही है या जिसने प्राप्त की है;

(vii) निम्नलिखित के संबंध में, राज्य सतर्कता आयोग, यदि कोई है, या राज्य सरकार का कोई अधिकारी या कोई अन्य प्राधिकारी, जिसे राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे –

(अ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो केंद्रीय सरकार की सेवा या वेतन में या किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए फीस या कमीशन के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा पारिश्रमिक पर या किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी सोसाइटी या स्थानीय प्राधिकारी या किसी निगम या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या किसी निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति (मंत्रियों, राज्य की विधान परिषद् या विधान सभा के सदस्यों के सिवाय); या

(आ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे निर्वाचक नामावली तैयार, प्रकाशित, बनाए रखने या पुनरीक्षित करने या राज्य में नगरपालिका या पंचायतों या अन्य स्थानीय निकाय के संबंध में किसी निर्वाचन या किसी निर्वाचन के भाग का संचालन करने के लिए सशक्त किया गया है; या

(इ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे राज्य सरकार के कार्यकलापों के संबंध में किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है या उससे अपेक्षा की गई है (मंत्रियों और राज्य की विधान परिषद् या विधान सभा के सदस्यों के सिवाय); या

(ई) ऐसा कोई व्यक्ति, जो राज्य सरकार से या किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही या प्राप्त करने वाली कृषि, उद्योग, व्यवसाय या बैंककारी में लगी किसी रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी का या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या निकाय या किसी सरकारी कंपनी का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदधारी है; या

(उ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी राज्य सेवा आयोग या बोर्ड का, चाहे जो भी नाम हो, अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा उस आयोग या बोर्ड की ओर से किसी परीक्षा का संचालन या कोई चयन करने के लिए नियुक्त की गई किसी चयन समिति का सदस्य है; या

(ऊ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा स्थापित या राज्य सरकार द्वारा स्थापित या उसके नियंत्रणाधीन या वित्तपोषित किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या उसके शासी निकाय का सदस्य, आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, रीडर, प्राध्यापक या कोई अन्य अध्यापक या कर्मचारी, चाहे जो भी पदनाम हो, है या ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सेवाओं का ऐसे विश्वविद्यालय या किसी ऐसे लोक प्राधिकरण द्वारा परीक्षाएं आयोजित या संचालित करने के संबंध में उपभोग किया गया है; या

(ए) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसी किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्था जिसे किसी भी रीति में स्थापित किया गया है, का कोई पदधारी या कर्मचारी है, जो राज्य सरकार या किसी स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही है या जिसने प्राप्त की है;

(viii) संविधान के अनुच्छेद 33 के खंड (क) या खंड

(ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों या व्यक्तियों के संबंध में, ऐसा कोई प्राधिकारी या ऐसे प्राधिकारी, जिसकी उनके संबंध में अधिकारिता है, जिसे, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे;

(ग) "शिकायतकर्ता" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो इस अधिनियम के अधीन प्रकटन के संबंध में कोई शिकायत करता है;

(घ) "प्रकटन" से, –

(i) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 45) के अधीन किसी अपराध को करने के प्रयत्न या अपराध किए जाने के संबंध में कोई शिकायत अभिप्रेत है;

(ii) जानबूझकर शक्ति के दुरुपयोग या जानबूझकर विवेकाधिकार के दुरुपयोग के संबंध में, जिसके कारण सरकार को प्रमाण्य सदोष होती है या लोक सेवक या किसी तृतीय पक्षकार को प्रमाण्य सदोष अभिलाभ उद्भूत होता है, कोई शिकायत अभिप्रेत है;

(iii) किसी लोक सेवक द्वारा किसी दांडिक अपराध को करने के प्रयत्न या अपराध क़िए जाने के संबंध में कोई शिकायत अभिप्रेत है,

जो लोक सेवक के विरुद्ध लिखित में या इलेक्ट्रानिक मेल द्वारा या इलेक्ट्रानिक मेल संदेश द्वारा की जाती है और जिसमें धारा 4 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट लोक हित प्रकटन सम्मिलित है;

(ङ) "इलेक्ट्रानिक मेल" या "इलेक्ट्रानिक मेल संदेश" से किसी कम्प्यूटर, कम्प्यूटर प्रणाली, कम्प्यूटर संसाधन या संचार यंत्र पर, कोई संदेश या सृजित या पारेषित या प्राप्त सूचना अभिप्रेत है, जिसमें पाठ, आकृति, श्रव्य, दृश्य तथा किसी अन्य इलेक्ट्रानिक अभिलेख के ऐसे संलग्नक सम्मिलित हैं, जो संदेश के साथ प्रेषित किए जाएं;

(च) "सरकारी कंपनी" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956

का 1) की धारा 617 में निर्दिष्ट कोई कंपनी अभिप्रेत है;

(छ) "अधिसूचना" से, यथास्थिति, भारत के राजपत्र या किसी राज्य के राजपत्र में प्रकाशित कोई अधिसूचना अभिप्रेत है;

(ज) "लोक प्राधिकारी" से सक्षम प्राधिकारी की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाला कोई प्राधिकारी, निकाय या संस्था अभिप्रेत है;

(झ) "लोक सेवक" का वही अर्थ होगा, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 2 के खंड (ग) में है, किंतु इसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश नहीं होगा;

(ञ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(ट) "विनियम" से इस अधिनियम के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए विनियम अभिप्रेत हैं।

अध्याय 2

लोक हित प्रकटन

4. लोक हित प्रकटन की आवश्यकता – (1) शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) के उपबंधों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई लोक सेवक या किसी गैर-सरकारी संगठन सहित कोई अन्य व्यक्ति सक्षम प्राधिकारी के समक्ष कोई लोक हित प्रकटन कर सकेगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी प्रकटन को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए लोक हित प्रकटन माना जाएगा और उसे सक्षम प्राधिकारी के समक्ष किया जाएगा तथा प्रकटन करने वाली शिकायत को सक्षम प्राधिकारी की ओर से ऐसे प्राधिकारी द्वारा, जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, प्राप्त किया जाएगा ।

(3) प्रत्येक प्रकटन सद्भावपूर्वक किया जाएगा और प्रकटन करने

वाला व्यक्ति एक व्यक्तिगत घोषणा करते हुए यह कथन करेगा कि युक्तियुक्त रूप से उसका यह विश्वास है कि उसके द्वारा प्रकट की गई जानकारी और उसमें अन्तर्विष्ट अभिकथन सारभूत रूप से सत्य है ।

(4) प्रत्येक प्रकटन ऐसी प्रक्रिया के अनुसार जिसे विहित किया जाए, लिखित में या इलेक्ट्रानिक मेल या इलेक्ट्रानिक मेल संदेश द्वारा किया जाएगा और उसमें सभी विशिष्टियां होंगी तथा उसके साथ समर्थनकारी दस्तावेज या अन्य सामग्री, यदि कोई हो, संलग्न होगी ।

(5) सक्षम प्राधिकारी, यदि उचित समझता है तो प्रकटन करने वाले व्यक्ति से और अधिक जानकारी या विशिष्टियां मंगा सकेगा ।

(6) यदि प्रकटन में लोक हित प्रकटन करने वाले शिकायतकर्ता लोक सेवक की पहचान उपदर्शित नहीं की गई है या शिकायतकर्ता लोक सेवक की पहचान गलत या मिथ्या पाई जाती है तब सक्षम प्राधिकारी द्वारा लोक हित अथवा प्रकटन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी ।

अध्याय 3

लोक हित प्रकटन के संबंध में जांच

5. लोक हित प्रकटन के प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां और कृत्य – (1) धारा 4 के अधीन किसी लोक हित प्रकटन के प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, –

(क) शिकायतकर्ता या लोक सेवक से यह अभिनिश्चित करेगा कि क्या वह, वही व्यक्ति या लोक सेवक है या नहीं जिसने प्रकटन किया है;

(ख) शिकायतकर्ता की पहचान को तब तक छिपाएगा जब तक कि स्वयं शिकायतकर्ता ने अपनी पहचान किसी अन्य कार्यालय या प्राधिकारी को लोक हित प्रकटन करते समय या अपनी शिकायत में या अन्यथा प्रकटन न की हो ।

(2) सक्षम प्राधिकारी शिकायत प्राप्त करने और शिकायतकर्ता की पहचान छिपाने के पश्चात् सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करने के लिए कि प्रकटन का अन्वेषण करने के लिए आगे कार्यवाही करने का कोई आधार है या नहीं, सावधानीपूर्वक जांच, ऐसी रीति में और ऐसे समय

के भीतर करेगा जो विहित किया जाए ।

(3) यदि सक्षम प्राधिकारी की, या तो सावधानीपूर्वक जांच के परिणामस्वरूप या किसी जांच के बिना प्रकटन के आधार पर ही यह राय है कि प्रकटन का अन्वेषण किए जाने की आवश्यकता है तो वह संगठन या प्राधिकरण के विभागाध्यक्ष संबंधित बोर्ड या निगम या संबंधित कार्यालय से ऐसे समय के भीतर, जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, टिप्पणी या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट मांगेगा ।

(4) उपधारा (3) में निर्दिष्ट की गई टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट को मांगते समय सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट नहीं करेगा और संबंधित संगठन या संबंधित कार्यालय के विभागाध्यक्ष को यह निदेश करेगा कि वह शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट न करे :

परंतु यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि लोक प्रकट के आधार पर उपधारा (3) के अधीन उनसे टिप्पणी या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट मांगने के प्रयोजन के लिए संगठन या प्राधिकरण, बोर्ड या संबंधित निगम या संबंधित कार्यालय के विभागाध्यक्ष को शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट करना आवश्यक हो गया है तो सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पूर्व लिखित सहमति से संगठन या प्राधिकरण या बोर्ड या संबंधित निगम या संबंधित कार्यालय के ऐसे विभागाध्यक्ष को शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान उक्त प्रयोजन के लिए प्रकट कर सकेगा :

परंतु यह और कि यदि शिकायतकर्ता या लोक सेवक, विभागाध्यक्ष को अपना नाम प्रकट किए जाने से सहमत नहीं होता है तो उस मामले में, यथास्थिति, शिकायतकर्ता या लोक सेवक अपनी शिकायत के समर्थन में सभी दस्तावेजी साक्ष्य सक्षम प्राधिकारी को उपलब्ध कराएगा ।

(5) संगठन या संबंधित कार्यालय का विभागाध्यक्ष ऐसे शिकायतकर्ता या लोक सेवक की, जिसने प्रकटन किया है, पहचान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं करेगा ।

(6) यदि जांच करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि –

(क) प्रकटन में अंतर्विष्ट तथ्य और अभिकथन तुच्छ या तंग करने वाले हैं; या

(ख) जांच के संबंध में कार्यवाही करने के पर्याप्त आधार नहीं हैं,

तो वह मामले को बंद कर देगा ।

(7) उपधारा (3) में निर्दिष्ट टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट के प्राप्त होने के पश्चात् यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि ऐसी टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि या तो जानबूझकर शक्ति का दुरुपयोग या जानबूझकर विवेकाधिकार का दुरुपयोग किया गया है या भ्रष्टाचार के अभिकथन सिद्ध हो गए हैं तो वह लोक प्राधिकारी को निम्नलिखित एक या अधिक उपाय करने की सिफारिश करेगा, अर्थात् :–

(i) संबंधित लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करना;

(ii) यथास्थिति, भ्रष्ट आचरण या पद के दुरुपयोग या विवेकाधिकार के दुरुपयोग के परिणामस्वरूप सरकार को हुई हानि के प्रतितोष के लिए समुचित प्रशासनिक कदम उठाना;

(iii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यदि आवश्यक हो, तो तत्समय प्रवृत्त सुसंगत विधियों के अधीन दांडिक कार्यवाहियों को आरंभ करने के लिए समुचित प्राधिकारी या अभिकरण को सिफारिश करेगा;

(iv) दोष निवारक उपाय करने की सिफारिश करेगा;

(v) खंड (i) से (iv) के अधीन न आने वाला ऐसा कोई अन्य उपाय जो इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो ।

(8) वह लोक प्राधिकारी, जिसे उपधारा (7) के अधीन कोई सिफारिश की जाती है, उस सिफारिश की प्राप्ति के तीन मास के भीतर या तीन मास से अनधिक की ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर, जो सक्षम प्राधिकारी, लोक प्राधिकारी द्वारा किए गए अनुरोध पर अनुज्ञात करे, उस सिफारिश पर कोई विनिश्चय करेगा :

परंतु यदि लोक प्राधिकारी सक्षम प्राधिकारी की सिफारिश से सहमत नहीं होता है तो वह ऐसी असहमति के कारणों को अभिलिखित करेगा ।

(9) सक्षम प्राधिकारी, जांच करने के पश्चात्, शिकायतकर्ता या लोक सेवक को शिकायत पर की गई कार्रवाई और उसके अंतिम निष्कर्ष के बारे में सूचित करेगा :

परंतु ऐसे किसी मामले में, जहां सक्षम प्राधिकारी जांच करने के पश्चात् मामले को बंद करने का विनिश्चय करता है, वहां वह मामले को बंद करने का आदेश पारित करने से पूर्व, यदि शिकायतकर्ता ऐसी वांछा करे तो शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा ।

6. सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच न किए जाने वाले विषय – (1) यदि किसी प्रकटन में विनिर्दिष्ट विषय या उठाए गए किसी विवाद्यक का अवधारण प्रकटन में विनिर्दिष्ट विषयों या उठाए गए विवाद्यक पर विचार करने के पश्चात् किसी ऐसे न्यायालय या अधिकरण द्वारा किया गया है, जो कि ऐसे विवाद्यक का अवधारण करने के लिए प्राधिकृत है, तब सक्षम प्राधिकारी प्रकटन के संबंध में उस सीमा तक विचार नहीं करेगा जिस सीमा तक ऐसे प्रकटन में ऐसे विवाद्यक पर पुनः विचार करने की मांग की गई हो ।

(2) सक्षम प्राधिकारी ऐसे किसी प्रकटन को ग्रहण नहीं करेगा या उसके संबंध में जांच नहीं करेगा –

(क) जिसकी बाबत लोक सेवक (जांच) अधिनियम, 1850 (1850 का 37) के अधीन औपचारिक और लोक जांच किए जाने का आदेश किया गया है; या

(ख) ऐसे किसी विषय की बाबत जिसे जांच आयोग अधिनियम, 1952 (1952 का 60) के अधीन जांच के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी ऐसे किसी प्रकटन का अन्वेषण नहीं करेगा जिसमें ऐसा अभिकथन अंतर्ग्रस्त हो जिसके संबंध में शिकायत करने की तारीख से सात वर्ष के पश्चात् कार्रवाई किए जाने का अभिकथन किया गया है ।

(4) इस अधिनियम में किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया

जाएगा कि सक्षम प्राधिकारी को इस अधिनियम के अधीन किसी कर्मचारी द्वारा अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए यदि कोई सद्भाविक कार्रवाई या सद्भाविक विवेकाधिकार (जिसके अंतर्गत प्रशासनिक और कानूनी विवेकाधिकार भी है) का प्रयोग किया है उसके विरुद्ध जांच करने के लिए सशक्त किया गया है ।

अध्याय 4

सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां

7. सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन सक्षम प्राधिकारी को प्रदत्त की गई शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, सक्षम प्राधिकारी, जांच के प्रयोजन के लिए, किसी लोक सेवक या किसी अन्य व्यक्ति को जो कि उनकी राय में जानकारी देने या जांच के लिए सुसंगत दस्तावेजों को प्रस्तुत करने या जांच में सहायता के लिए समर्थ है तो वह उसे उक्त प्रयोजन के लिए ऐसी जानकारी देने या ऐसे दस्तावेज, प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा, जो आवश्यक हो ।

(2) निम्नलिखित विषयों की बाबत किसी ऐसी जांच (जिसके अन्तर्गत आरम्भिक जांच भी है) के प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी को वे सभी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय किसी सिविल न्यायालय की होती हैं, अर्थात् :–

(क) किसी साक्षी को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ख) किसी दस्तावेज का प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की मांग करना;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कोई कमीशन निकालना;

(च) ऐसे अन्य विषय, जो विहित किए जाएं ।

(3) सक्षम प्राधिकारी, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा और सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही धारा 193 और धारा 228 के अर्थान्तर्गत तथा भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी ।

(4) धारा 8 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सरकारी या किसी भी लोक सेवक द्वारा अभिप्राप्त या उसको दी गई जानकारी की गोपनीयता बनाए रखने या अन्य निर्बन्धन की किसी बाध्यता का दावा, चाहे शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अधिरोपित हो, सक्षम प्राधिकारी या लिखित रूप में उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति या अभिकरण के समक्ष कार्यवाहियों में किसी लोक सेवक द्वारा नहीं किया जाएगा और सरकारी या कोई भी लोक सेवक किसी ऐसी जांच के संबंध में दस्तावेज पेश करने या साक्ष्य देने की बाबत ऐसे किसी विशेषाधिकार का हकदार नहीं होगा जो किसी अधिनियमिति द्वारा या उसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों द्वारा अनुज्ञात है :

परंतु सक्षम प्राधिकारी, सिविल न्यायालय की ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय यह सुनिश्चित करने के लिए यथा आवश्यक कदम उठाएगा कि शिकायत करने वाले व्यक्ति की पहचान प्रकट नहीं की गई है या उसे जोखिम में नहीं डाला गया है ।

8. कतिपय मामलों की प्रकटन से छूट – (1) किसी व्यक्ति से इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर ऐसी कोई सूचना देने या ऐसा कोई उत्तर देने या कोई दस्तावेज या जानकारी पेश करने या इस अधिनियम के अधीन जांच में कोई अन्य सहायता देने की अपेक्षा नहीं की जाएगी या उसे प्राधिकृत नहीं किया जाएगा, यदि ऐसे प्रश्न या दस्तावेज या जानकारी से भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या नैतिकता के हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है या न्यायालय का अवमान, मानहानि या किसी अपराध के उद्दीपन के संबंध में, जिसमें –

(क) संघ सरकार के मंत्रिमंडल या मंत्रिमंडल की किसी समिति की कार्यवाहियों का प्रकटन अंतर्वलित हो;

(ख) राज्य सरकार के मंत्रिमंडल या उस मंत्रिमंडल की किसी समिति की कार्यवाहियों का प्रकटन अंतर्वलित हो,

और इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, यथास्थिति, भारत सरकार के सचिव या राज्य सरकार के सचिव या केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा इस प्रकार प्राधिकृत किसी प्राधिकारी द्वारा यह प्रमाणित करने के लिए जारी कोई प्रमाणपत्र, कि कोई जानकारी, उत्तर या किसी दस्तावेज का भाग खंड (क) या खंड (ख) में विनिर्दिष्ट प्रकृति का है, आबद्धकर और निश्चायक होगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी व्यक्ति को, इस अधिनियम के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए कोई ऐसा साक्ष्य देने या कोई ऐसा दस्तावेज पेश करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा, जिसके लिए उसे किसी न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में देने या पेश करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता ।

9. समुचित तंत्र पर सक्षम प्राधिकारी का अधीक्षण – (1) प्रत्येक लोक प्राधिकारी, धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन उसे भेजे गए प्रकटनों के संबंध में विचार करने या जांच करने के प्रयोजनों के लिए एक समुचित तंत्र सृजित करेगा ।

(2) सक्षम प्राधिकारी, प्रकटनों पर विचार करने या जांच करने के प्रयोजनों के लिए उपधारा (1) के अधीन सृजित तंत्र के कार्यकरण का अधीक्षण करेगा और समय-समय पर इसके उचित कार्यकरण के लिए ऐसे निदेश देगा, जो वह आवश्यक समझे ।

10. सक्षम प्राधिकारी द्वारा कतिपय मामलों में पुलिस प्राधिकारी आदि की सहायता लेना – संबंधित संगठन से सावधानीपूर्वक जांच करने या जानकारी अभिप्राप्त करने के प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन या पुलिस प्राधिकारी या किसी अन्य प्राधिकारी, जिसे आवश्यक समझा जाए, से सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्राप्त प्रकटन के अनुसरण में विहित समय के भीतर जांच पूरी करने के लिए सभी प्रकार की सहायता प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत होगा ।

अध्याय 5

प्रकटन करने वाले व्यक्तियों का संरक्षण

11. उत्पीड़न के विरुद्ध रक्षोपाय – (1) केन्द्रीय सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि कोई व्यक्ति या लोक सेवक, जिसने इस अधिनियम के अधीन प्रकटन किया है, मात्र इस आधार पर किन्हीं कार्यवाहियों के आरंभ द्वारा या अन्यथा उत्पीड़ित न किया जाए, कि ऐसे व्यक्ति या लोक सेवक ने इस अधिनियम के अधीन जांच में कोई प्रकटन किया था या जांच में सहायता दी थी ।

(2) यदि किसी व्यक्ति को इस आधार पर उत्पीड़ित किया जा रहा है या उत्पीड़ित किए जाने की संभावना है कि उसने इस अधिनियम के अधीन कोई शिकायत फाइल की थी या प्रकटन किया था या जांच में सहायता की थी, तो वह मामले में प्रतितोष के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष आवेदन फाइल कर सकेगा और ऐसा प्राधिकारी ऐसी कार्यवाही करेगा, जो वह ठीक समझे और ऐसे व्यक्ति को उत्पीड़ित होने से संरक्षित करने या उसे उत्पीड़न से बचाने के लिए, यथास्थिति, संबद्ध लोक सेवक या लोक प्राधिकारी को उपयुक्त निदेश दे सकेगा :

परंतु सक्षम प्राधिकारी, लोक प्राधिकारी या लोक सेवक को कोई ऐसा निदेश देने से पूर्व, शिकायतकर्ता और, यथास्थिति, लोक प्राधिकारी या लोक सेवक को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा :

परंतु यह और कि ऐसी किसी सुनवाई में यह साबित करने का भार लोक प्राधिकारी पर होगा कि लोक प्राधिकारी की ओर से अभिकथित कार्रवाई उत्पीड़न नहीं है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी द्वारा उपधारा (2) के अधीन दिया गया प्रत्येक निदेश उस लोक सेवक या लोक प्राधिकारी के विरुद्ध आबद्धकर होगा, जिसके विरुद्ध उत्पीड़न का अभिकथन साबित हो गया है ।

(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी अन्य बात के होते हुए भी किसी लोक सेवक के संबंध में उपधारा (2) के अधीन निदेश देने की शक्ति में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के लिए प्रकटन करने वाले लोक सेवक के प्रत्यावर्तन के निदेश देने की शक्ति होगी ।

(5) ऐसा कोई व्यक्ति, जो उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी के निदेश का जानबूझकर अनुपालन नहीं करता है, ऐसी शास्ति के लिए, जो तीस हजार रुपए तक की हो सकेगी, दायी होगा ।

12. साक्षियों और अन्य व्यक्तियों का संरक्षण – (1) यदि सक्षम प्राधिकारी की शिकायतकर्ता या साक्षियों के आवेदन पर या एकत्रित की गई जानकारी के आधार पर यह राय है कि या तो शिकायतकर्ता या लोक सेवक या साक्षी या इस अधिनियम के अधीन जांच के लिए सहायता देने वाले किसी व्यक्ति को संरक्षण की आवश्यकता है तो सक्षम प्राधिकारी संबद्ध सरकारी प्राधिकारी (पुलिस सहित) को समुचित निदेश जारी करेगा, जो ऐसे शिकायतकर्ता या लोक सेवक या संबद्ध व्यक्तियों के संरक्षण के लिए अपने अभिकरणों के माध्यम से आवश्यक कदम उठाएगा ।

13. शिकायतकर्ता की पहचान का संरक्षण – (1) सक्षम प्राधिकारी तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए तब तक शिकायतकर्ता की पहचान और उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों या जानकारी को इस अधिनियम के अधीन यथा अपेक्षित छिपाएगा, जब तक स्वयं सक्षम प्राधिकारी द्वारा अन्यथा इस प्रकार विनिश्चय नहीं किया जाता या न्यायालय के आदेश के आधार पर इसका प्रकट किया जाना या पेश किया जाना आवश्यक नहीं हो जाता ।

14. अंतरिम आदेश पारित करने की शक्ति – (1) सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक द्वारा प्रकटन करने के पश्चात् किसी भी समय, यदि उसकी यह राय है कि उक्त प्रयोजन के लिए किसी जांच के जारी रहने के दौरान किसी भ्रष्ट आचरण को रोकना आवश्यक है तो ऐसे अंतरिम आदेश पारित कर सकेगा, जो वह ऐसे आचरण को तत्काल रोकने के लिए ठीक समझे ।

अध्याय 6

अपराध और शास्तियां

15. अपूर्ण या गलत या भ्रामक टिप्पणियां या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट देने के लिए शास्ति – जहां सक्षम प्राधिकारी की, संगठन या संबंधित पदधारी द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायत पर रिपोर्ट या स्पष्टीकरण या धारा 5 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट रिपोर्ट की परीक्षा

करते समय, यह राय है कि संगठन या संबंधित पदधारी ने, किसी युक्तियुक्त कारण के बिना विनिर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है या असद्भाव से रिपोर्ट प्रस्तुत करने से इंकार किया है या जानते हुए अपूर्ण, गलत या भ्रामक या मिथ्या रिपोर्ट दी है या ऐसे अभिलेख या सूचना को नष्ट किया है, जो प्रकटन की विषयवस्तु थी या रिपोर्ट प्रस्तुत करने में किसी रीति में बाधा पहुंचाई है, तो वह, –

(क) जहां संगठन या संबंधित पदधारी ने किसी युक्तियुक्त कारण के बिना विनिर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है या असद्भाव से रिपोर्ट प्रस्तुत करने से इंकार किया है वहां ऐसी शास्ति अधिरोपित करेगा, जो रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक प्रत्येक दिन के लिए दो सौ पचास रुपए तक की हो सकेगी, तथापि, ऐसी शास्ति की कुल रकम पचास हजार रुपए से अधिक नहीं होगी;

(ख) जहां संगठन या संबंधित पदधारी ने, जानते हुए अपूर्ण, गलत या भ्रामक या मिथ्या रिपोर्ट दी है या ऐसे अभिलेख या सूचना को नष्ट किया है, जो प्रकटन की विषयवस्तु थी या रिपोर्ट प्रस्तुत करने में किसी रीति में बाधा पहुंचाई है, वहां ऐसी शास्ति अधिरोपित कर सकेगा, जो पचास हजार रुपए तक की हो सकेगी :

परंतु किसी व्यक्ति पर तब तक कोई शास्ति अधिरोपित नहीं की जाएगी, जब तक उसे सुनवाई का अवसर नहीं दे दिया गया हो ।

16. शिकायतकर्ता की पहचान प्रकट करने के लिए शास्ति – कोई व्यक्ति, जो उपेक्षापूर्वक या असद्भाव से किसी शिकायतकर्ता की पहचान प्रकट करता है, इस अधिनियम के अन्य उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसी अवधि के कारावास से, जो तीन वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, जो पचास हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

17. मिथ्या या तुच्छ प्रकटन के लिए दंड – कोई व्यक्ति, जो असद्भाव से और जानते हुए कोई प्रकटन करता है कि यह गलत या मिथ्या या भ्रामक था तो वह ऐसी अवधि के कारावास से, दो वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी जो तीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

18. कतिपय मामलों में विभागाध्यक्ष के लिए दंड – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है, वहां विभागाध्यक्ष को तब तक अपराध का दोषी माना जाएगा और उसके विरुद्ध कार्रवाई की जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा, जब तक वह यह साबित नहीं कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या कि उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सभी सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है और यह साबित हो जाता है कि अपराध किसी अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उसके द्वारा किया गया समझा जाता है तो ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्रवाई किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा ।

19. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने के दायी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का दायी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा

निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है; और

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

20. उच्च न्यायालय को अपील – धारा 14 या धारा 15 या धारा 16 के अधीन शास्ति अधिरोपित करने से संबंधित सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उस आदेश की तारीख से, जिसके विरुद्ध अपील की जानी है, साठ दिन की अवधि के भीतर उच्च न्यायालय को अपील कर सकेगा :

परंतु उच्च न्यायालय, साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी को समय के भीतर अपील करने से पर्याप्त कारण से निवारित किया गया था ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "उच्च न्यायालय" से ऐसा उच्च न्यायालय अभिप्रेत है जिसकी अधिकारिता के भीतर वाद हेतुक उद्भूत हुआ है ।

21. अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालय को, किसी ऐसे विषय की बाबत अधिकारिता नहीं होगी जिसको इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन सक्षम प्राधिकारी अवधारित करने के लिए सशक्त है, और इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई की बाबत किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई व्यादेश मंजूर नहीं किया जाएगा ।

22. न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाना – कोई भी न्यायालय सक्षम प्राधिकारी या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी या व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के सिवाय इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध का

संज्ञान नहीं लेगा ।

(2) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय से निम्नतर कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

23. प्रकटीकरणों पर रिपोर्ट – (1) सक्षम प्राधिकारी, ऐसी रीति में जो विहित की जाए, अपने क्रियाकलापों को करने के बारे में एक समेकित वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसे, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को अग्रेषित करेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त होने पर, उसकी एक प्रति, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी :

परंतु जहां तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में सक्षम प्राधिकारी द्वारा ऐसी वार्षिक रिपोर्ट के तैयार करने के बारे में उपबंध किया गया है वहां सक्षम प्राधिकारी द्वारा उक्त वार्षिक रिपोर्ट में उस अधिनियम के अधीन क्रियाकलापों को करने के बारे में पृथक् भाग अंतर्विष्ट किया जाएगा ।

24. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात की बाबत कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाहियां सक्षम प्राधिकारी या उसकी ओर से कार्य कर रहे किसी अधिकारी, कर्मचारी, अभिकरण या किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होंगी ।

25. केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (4) के अधीन लिखित रूप में या

समुचित इलेक्ट्रानिक साधनों द्वारा प्रकटीकरण की प्रक्रिया;

(ख) वह रीति, जिसमें और वह समय, जिसके भीतर धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा सावधानीपूर्वक जांच की जाएगी;

(ग) ऐसे अतिरिक्त विषय, जिनकी बाबत सक्षम प्राधिकारी, धारा 7 की उपधारा (2) के खंड (च) के अधीन सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा;

(घ) धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक रिपोर्ट का प्ररूप;

(ङ) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना अपेक्षित है या विहित किया जाए ।

26. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी ।

27. विनियम बनाने की शक्ति – सक्षम प्राधिकारी, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे सभी विषयों के लिए, जिनके लिए इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने के प्रयोजनों के लिए उपबंध करना समीचीन है, उपबंध करने के लिए ऐसे विनियम बना सकेगा जो अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों से असंगत न हों ।

28. अधिसूचनाओं और नियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी प्रत्येक अधिसूचना और बनाया गया प्रत्येक नियम और सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम, जारी की जाने या बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखी जाएगी या रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस अधिसूचना या उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो

तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगी/होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह अधिसूचना या नियम अथवा विनियम नहीं बनाई, बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगी/जाएगा । तथापि, अधिसूचना या नियम अथवा विनियम के ऐसे परिवर्तन या बातिलकरण से उसके अधीन पहले गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

29. राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना और बनाए गए नियमों का राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी प्रत्येक अधिसूचना और राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम तथा सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम जारी किए जाने या बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी/रखा जाएगा ।

30. कठिनाइयां दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार ऐसे आदेश द्वारा, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हो, उस कठिनाई को दूर कर सकेगी :

परंतु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

31. निरसन और व्यावृत्ति – (1) तारीख 29 अप्रैल, 2004 के समसंख्यांक संकल्प द्वारा यथा संशोधित, भारत सरकार, कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन (कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग) का संकल्प संख्यांक 371/12/2002-एवीडी-III, तारीख 21 अप्रैल, 2004 द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी उक्त संकल्प के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के अधीन की गई समझी जाएगी ।

———

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 195/- उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105